श्री गुरवे नमः

शिक्षा कौस्तुभ

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 01 | अंक 01 | सितम्बर 2023 | पृष्ठ 58

शिक्षा जीवन का आधार

प्रकाशक

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ
जयपुर

प्रेरणा स्त्रोत : ''संस्कृत सुमेरु'' पं. मोतीलाल जोशी

ISSN :

शिक्षा कौस्तुभ

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 1 | अंक 1 सितम्बर 2023 | पृष्ठ 58

आशीष प्रदाता
- श्री श्री 1008 भुवनेश्वरानंद जी महाराज
- महंत श्री राम प्रसाद जी महाराज
- महंत श्री हरिशंकर दास जी वेदांती

प्रेरणा स्त्रोत
'संस्कृत सुमेरु'
पं. मोतीलाल जोशी

परामर्श मंडल
- देवर्षि कलानाथ शास्त्री
- प्रो. बनवारी लाल गौड़
- प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र
- प्रो. युगल किशोर मिश्र
- प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
- प्रो. जयप्रकाश नारायण द्विवेदी
- प्रो. सदानंद दीक्षित
- प्रो. गोपीनाथ शर्मा
- डॉ. सरोज कोचर

निर्णायक मण्डल
- डॉ. राजेश्वरी भट्ट
- प्रो. श्रीकृष्ण शर्मा
- प्रो. ताराशंकर पाण्डेय
- डॉ. रामदेव साहू
- डॉ. कृष्णा शर्मा
- प्रो. कुलदीप शर्मा
- डॉ. सुभद्रा जोशी

प्रबन्ध संपादक
डॉ. राजकुमार जोशी

प्रधान संपादक
डॉ. मनीषा शर्मा

संपादक मंडल
डॉ. सीताराम दोतोलिया
डॉ. निरंजन साहू
डॉ. सुरेंद्र कुमार शर्मा
श्रीमती मीनाक्षी शर्मा

प्रकाशक
राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ
शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर
Ph. : +91-141-2671967 | E-mail : info@rspv.org | Website : www.rspv.org

''संस्कृत सुमेरु''

पं.श्रीमोतीलालजोशिमहाभागानां चरणयोः
सादरं समर्पणम्

◆◆◆◆◆

भो संस्कृतभक्तिव्रतिन् ! संस्कृते हि जीवनम् ।
सदा त्वया हि निर्वोढं लभेथा अमरत्वम् ।।

भो संस्कृतजनग्राहिन् ! जनजननायकस्त्वम् ।
संस्कृतिः त्वया रक्षिता! लभेथा अमरत्वम् ।।

हे देवभाषारक्षिन् ! त्वयैव प्रवर्धितम् ।
राजस्थाने संस्कृतं लभेथा अमरत्वम् ।।

हे संस्कृतेः सम्पोषक ! सनातनीं संस्कृतिम् ।
जीवने सदैव पुपोष लभेथा अमरत्वम् ।।

'जोशी 'नाम विख्यातं त्रिवेदिकुलभूषणम् ।
मनोहरपुरवास्तव्यं नुमो वयं सादरम् ।।

राजस्थानप्रशिक्षण शिक्षकसम्मेलनम् ।
त्वया नूनं प्रवर्धितं नुमो वयं सादरम् ।।

हे मोतीलालजोशिन्! वाग्मिन्! गुणग्राहिन् ।
निवत्स्यसि हृदयेऽस्माकं नुमो वयं सादरम् ।।

हे संस्कृतजगन्नायक ! भवताञ्चोपायनम् ।
न विस्मरिष्यामः कदा नुमो वयं सादरम् ।।

सर्जक एवं प्रस्तोता
डॉ. सीताराम दोतोलिया
बिलौची, जयपुर

अनुक्रमणिका

1.	राष्ट्रीय एकता का मूलाधार : संस्कृत भाषा	देवर्षि कलानाथ शास्त्री	5
2.	योगः कर्मसु कौशलम्	प्रो. वैद्य बनवारीलाल गौड	12
3.	राजस्थान में रामभक्त हनुमान के प्रसिद्ध मन्दिर	श्रीमती माधुरी शास्त्री	17
4.	अनुपम गुणों के धारक : आचार्य श्री	डॉ. सरोज कोचर	21
5.	पूर्णावतार श्री कृष्ण तथा षोडश कला का रहस्य	प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा	25
6.	वेदों में आयुर्वेद	गोपीनाथ पारीक गोपेश	33
7.	अस्माकं ब्रह्माण्डम्	डॉ. रामदेव साहू	44
8.	गुरु -महिमा	डॉ० शिवचरण शर्मा	47
9.	सनातन धर्म का विज्ञान	अंजना शर्मा	50
10.	Psychological Benefits of Exercise	Dr. Manisha Sharma	54

मुद्रण : **कन्ट्रोल पी**, जयपुर - मो. : 9549666600

सम्पादकीय

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन एवं राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ शाहपुराबाग, जयपुर द्वारा श्री श्री 1008 भुवनेश्वरानंद जी महाराज, महंत श्री राम प्रसाद जी महाराज एवं महंत श्री हरिशंकर दास जी वेदांती के शुभाशीर्वाद के परिणामस्वरूप **'शिक्षा कौस्तुभ'** त्रैमासिक शोधपत्रिका के प्रथम वर्ष का प्रथम अंक प्रकाशित किया जा रहा है। 'संस्कृत सुमेरु' विद्वत् - शिरोमणि स्व. पं. मोतीलाल जी जोशी के संकल्प की परिणति के रूप में उनकी शाश्वती प्रेरणा का यह उत्कृष्ट आयाम विज्ञ परामर्शदाताओं के सत्परामर्श से निर्मित किया जा कर संपादक मण्डल द्वारा सम्पादित किया जा रहा है।

त्रैमासिक शोध पत्रिका के इस अंक में शिक्षा, संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान के विषयों पर उत्कृष्ट विद्वानों के लेख-शोधलेख संकलित है। सर्वप्रथम राष्ट्रपतिसम्मानित देवर्षि कलानाथ शास्त्री द्वारा लिखित 'राष्ट्रीय एकता का मूलाधार . संस्कृत भाषा' लेख में संस्कृत के गौरवपूर्ण ऐतिह्य की प्रस्तुति हुई है। यह लेख संस्कृत भाषा की वर्णमाला, शब्दावली, वाङ्मय एवं उनके प्रभावों का विश्लेषण भारतीय शैक्षिक गुरुत्व को उपस्थापित करता है। तत्पश्चात् राष्ट्रपति सम्मापित प्रो. वैद्य बनवारीलाल गौड द्वारा लिखित 'योगः कर्मसु कौशलम्' योगविषयक लेख योग की दार्शनिक अवधारणा को आयुर्वेदीय संदर्भ में प्रस्तुत करता है। वरिष्ठ साहित्यकार श्रीमती माधुरी शास्त्री द्वारा लिखित 'राजस्थान में रामभक्त हनुमान के प्रसिद्ध मन्दिर' लेख ऐतिहासिक होने के साथ-साथ सांस्कृतिक दृष्टि से अद्भुत प्रेरणास्पद है।

डॉ. सरोज कोचर द्वारा लिखित 'अनुपम गुणों के धारक : आचार्य श्री' लेख में जैन मुनि श्री इन्द्रविजय जी के व्यक्तित्व के साथ-साथ उनके द्वारा किये गये जैन धर्म के प्रचार प्रसार एवं भारतीय संस्कृति के संरक्षण विषयक संदर्भों का रोचक प्रस्तुतीकरण हुआ है। तत्पश्चात् प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा द्वारा लिखित 'पूर्णावतार श्री कृष्ण तथा षोडश कला का रहस्य' शोधलेख में अवतारवाद की पृष्ठभूमि में श्री कृष्ण के पूर्णत्व की व्याख्या की गयी है। श्री गोपीनाथ पारीक गोपेश द्वारा लिखित 'वेदों में आयुर्वेद' शीर्ष लेख में आयुर्वेद के शास्त्रीय आधारों का प्रस्तुतीकरण हुआ है। डॉ. रामदेव साहू द्वारा लिखित 'अस्माकं ब्रह्माण्डम्' शोध लेख ब्रह्माण्ड के विषय को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करता है। डॉ. शिवचरण शर्मा साहित्याचार्य द्वारा लिखित 'गुरु-महिमा' लेख शिक्षक के प्राचीन गौरव का उपस्थापन करता है। श्रीमती अंजना शर्मा द्वारा लिखित 'सनातन धर्म का विज्ञान' लेख में अनेक धार्मिक विषयों को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। डॉ. मनीषा शर्मा द्वारा लिखित 'Psychological Benefits of Exercise शोध लेख में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तनावहीनता के उपायों को दर्शाते हुये आनन्द से जीवन जीने के सूत्र प्रस्तुत किये गये हैं, जो अत्यंत उपयोगी है।

आशा है, सुधी पाठक इन्हें रुचिपूर्वक हृदयंगम करने हेतु उत्साहशील होंगे।

शुभकामनाओं सहित....

प्रधान संपादक - डॉ. मनीषा शर्मा

राष्ट्रीय एकता का मूलाधार : संस्कृत भाषा

देवर्षि कलानाथ शास्त्री

(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

सहस्राब्दियों के इतिहास वाले इस देश को जिन तत्त्वों ने सांस्कृतिक और भावात्मक एकता के सूत्र में बांध कर आज तक एक राष्ट्र के रूप में जीवन्त रखा है उनमें संस्कृत भाषा प्रमुख है। भावात्मक एकता के कारकों में संस्कृति की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है जिसके धर्म एवं भाषा प्रमुख अंग हैं। यद्यपि धर्म का नाम लेना आज के परिवेश में निरापद नहीं है अतः उससे चाहे हम कतराएं किन्तु यह स्पष्ट है कि एक धर्म तथा एक भाषा देश के निवासियों को जोड़ने का बहुत बड़ा कारक होती है। इस देश में विभिन्न भाषा भाषियों और विभिन्न धर्मावलम्बियों को भी एक सांस्कृतिक इतिहास ने जोड़े रखा है। ऐसे अनेक कारकों में कलाएं तथा संगीत भी आते हैं जिनका नाम राष्ट्रीय एकता के कारकों में गिनाना चाहे अब तक चलन में नहीं आया हो। अब तक सन्तों, सूफियों, कबीर जैसे सुधारकों तथा राष्ट्रनेताओं के जीवनों को, ऐतिहासिक स्मारकों एवं स्वतंत्रता आन्दोलन की विभिन्न घटनाओं को ही हमारी धर्मनिरपेक्ष और सामाजिक संस्कृति के निदर्शन के रूप में गिनाया जाता रहा है। उस धर्मनिरपेक्ष संस्कृति की जिसमें राष्ट्रधर्म, कलाएँ और भाषाएँ आती हैं, संस्कृत भाषा सदियों से एकमात्र वाहिका रही है। इस दृष्टि से इसकी भूमिका राष्ट्रीय एकता के सूत्रों में मूर्धन्य है। इसके कुछ आधार तो बहुत जाने पहचाने हो गये हैं किन्तु कुछ अब भी विवेचन की अपेक्षा रखते हैं।

भाषिक एकता एवं समन्वय

यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि इस देश की विभिन्न भाषाओं में (केवल एक या दो अपवादों को छोड़ कर) वर्णमाला, शब्दावली तथा व्याकरण संरचना में एक आधारभूत समानता पायी जाती है, चाहे इन भाषाओं को आज हम आर्य या द्रविड़ आदि विभिन्न भाषा-समूहों में रखने लगे हों। यह क्या आश्चर्यजनक नहीं कि समस्त भारतीय

भाषाओं की जिनमें बंगला, मराठी आदि आर्य भाषाएँ भी हैं और तमिल, तेलगु आदि द्रविड़ भाषाएँ भी, वर्णमाला और वर्णों का क्रम बिल्कुल एक सा है। स्वर और व्यंजन कवर्ग, ववर्ग आदि का विभाजन बिल्कुल समान है। वर्ण क्रम की यह समानता अन्य विभेदों के बीच एकता की आधारभूत कड़ी है। यह एकता चाहे संस्कृत एवं अन्य आर्य भाषाओं की उद्गम स्रोत किसी अन्य भारोपीय परिवार की मूल भाषा के कारण हों।

भाषा के कारण, किन्तु इसका बहुत बड़ा आधार यह रहा कि या वेद-पूरे देश में वर्णसमाम्नाय वही अपनाया गया जो संस्कृत भाषा ने अपनाया था। पाणिनि ने अपने व्याकरण में वर्णमाला के जो माहेश्वर सूत्र आधारभूत माने उनमें भी स्वरों का क्रम वही रहा। व्यंजनों के वर्ण भी संस्कृत में सदियों से यही थे जो आज हैं। पाणिनीय व्याकरण की सर्वमान्यता के कारण इस देश की समस्त भाषाओं ने संस्कृत के वर्णक्रम को अपनाया अष्टाध्यायी और पाणिनीय शिक्षा का यह वर्णक्रम सारे देश का वर्णक्रम बन गया। यही कारण है कि आज यदि वर्ण क्रम संस्कृत के अनुसार रखा जाए तो समस्त भारतीय भाषाओं में वह समान रूप से सुविधाजनक रहेगा। वस्तुतः भारत में प्रचलित अनेक भाषा विभाषाओं के बीच एक अंक सुसंस्कृत संपर्क भाषा की स्थापना के लक्ष्य से ही पाणिनि ने इसका व्याकरण बनाया था और यह संस्कृत भाषा देश की संपर्क भाषा बन गई थी।

वर्णमाला

संस्कृत की वर्ण माला के वर्णों का आज जो क्रम है अर्थात् पहले स्वर (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, आदि) फिर व्यंजन जिनमें पहले कवर्ग, फिर बवर्ग, फिर तबर्ग, फिर पवर्ग आता है। अनेक सदियों से चले आ रहे वर्ण समाम्नाय का ही रूप है उत्तर वैदिक काल में पथ्यास्वसिन नाम का तथा ब्रह्मराशि नामक वर्ण समाम्नाय उल्लिखित मिलता है। इसके आधार पर प्रातिशाख्यों और शिक्षाओं (उच्चारण और ध्वनि सिखाने वाले वेदांग (में इसी क्रम से अक्षर विद्या सिखाई जाती थी। लिपि चाहे जो कुछ रही हो, ब्राह्मी, नागरी, नन्दिनागरी, शारदा, वर्णों का क्रम प्रायः यही रहता था। इसी वर्ण समाम्नाय को माहेश्वर सूत्रों तथा उदित् के संदर्भ से पाणिनि ने भी अपने व्याकरण का आधार बनाया, कातंत्र आदि व्याकरणों में भी यह वर्णों का क्रम किस आधार पर है? यह मनमाना या निराधार क्रम न होकर वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित है। मानवीय स्वर यंत्र कंठ से लेकर ओष्ठ तक ध्वनियों का उच्चारण करता है। अतः उच्चारण स्थानों का क्रम इसी प्रकार होगा। पहले कण्ठ, फिर तालु फिर मूर्धा, फिर दांत और होंठ। इसी क्रम में से संस्कृत के स्वर भी हैं और व्यंजन भी अ से औ तक स्वरों की और क, च, ट, त प वर्गों की आनुपूर्वी इसी सिद्धान्त पर बनायी गई है। क, का, कि, की, की बारहखड़ी भी इसी आधार पर है। इस वैज्ञानिक आधार को लेकर भरत की सभी लिपियों में वर्ण क्रम चला था

जो आज तक ब्राह्मी और नागरी लिपि की शाखाओं में ही मान्य नहीं है बल्कि द्रविड भाषाओं की लिपियों में भी मान्य है। तमिल आदि में इन वर्गों में वर्णों की संख्या चाहे कम हो (महाप्राण वर्ण न हो) किन्तु क्रम प्रायः वही है। यह भाषिक एकता क्या आश्चर्यजनक नहीं है?

शब्दावली

संस्कृत की शब्दावली भारत की समस्त भाषाओं में बहुत बड़ी मात्रा में व्याप्त है। यह हम सब कहते रहते हैं। इसे यों भी कहा जा सकता है कि जब संस्कृत का उद्भव हुआ था उसने समस्त देश की भाषाओं की शब्दावली को आत्मसात् कर अपना शब्द भण्डार विपुल और विराट बना लिया था। वैदिक काल में जो छांदस भाषा थी उसके शब्द भी संस्कृत में है, उस समय जो लोक भाषाएँ प्रचलित थी और जिन्हें पाणिनि ने भाषा शब्द से या विभाषा शब्द से व्यवहत किया है उन सबसे शब्दों को लेकर पाणिनि ने उनका संस्कार किया, संस्कृत व्याकरण लिखा और साधुत्व अनुशासित किया। आज हमें चाहे उन शब्दों का मूल ज्ञात न हो किन्तु वे विश्व की सारी भाषाओं से आकर संस्कृत में उसी समय मिल गये थे। केन्द्र जैसे शब्द यूनानी भाषा से आये थे। अमर कोष में आज भी केन्द्र शब्द नहीं मिलता। सैंकड़ों की संख्या में द्रविड भाषाओं से शब्द आकर संस्कृत के बन गये थे। नाक, नक्र, कोकिल, मयूर, केयूर, गुड आदि न जाने कितने द्रविड मूल वाले शब्द संस्कृत के हो गये। पाणिनि के समय तक जो प्रचलित हो गये थे उनका तो पाणिनि ने व्याकरण बना दिया जिनमें वैदिक, उत्तर वैदिक तथा लोक भाषाओं के शब्द शामिल थे। शेष के साधुत्व के अनुशासन के लिए परवर्ती वैयाकरणों व व्याख्याकारों ने सूत्र लिखे। उणादि सूत्र ऐसे ही शब्दों को पाणिनीय व्याकरण से संगत सिद्ध करने के लिए बनाये गये थे। मयूर, केयूर आदि शब्द आपको इसी उणादि में मिलेगें। संस्कृत शब्द भण्डार के इस महासागर की अंतर्धाराएं भारत की सारी भाषाओं में पहुंची (उर्दू, आदि एक दो अपवादों को छोड़कर, जिन्होंने भारतेतर भाषाओं और लिपियों को आधार बनाया)।

यही रहस्य है इस कथन का कि संस्कृत की शब्दावली समस्त आर्य भाषाओं में विपुल परिमाण में पहुंची है और घुलमिल गई है। मोटे अनुमान से कन्नड़ और तेलगु में ८० प्रतिशत, मलयालग में ७० प्रतिशत और तमिल में ६० प्रतिशत शब्दावली संस्कृत मूल की है। आज राजनैतिक कारणों से तमिल में से संस्कृत मूल के शब्दों के क्रमिक वहिष्कार का प्रयत्न चाहे हो रहा हो किन्तु शेष सभी भाषाओं में वह शब्दावली इतनी व्यापक है कि उन भाषाओं में सांस्कृतिक एकत्व का स्पष्ट आभास होने लगता है। जिस प्रकार राम कथा, पाण्डव कथा तथा महाबीर, बुद्ध आदि महापुरुषों के प्रति श्रद्धा सारे देश को एक सांस्कृतिक भाव भूमि पर ला खड़ा करती है उसी प्रकार संस्कृत की यह

शब्दावली सब भाषाओं को एक रंग देती है। संस्कृत के शब्दों से सारे देशवासियों के नामकरण सदियों से होते रहे हैं। बंगाल में बंगला बोलने वालों के नाम तारिणीप्रपन्न, विधुशेखर आदि, उड़िया बोलने वालों के नाम कालिंदीचरण आदि, तमिल बोलने वालों के पार्थसारथि,, कोदंडपाणि आदि और मराठी बोलने वालों के पांडुरंग, विठ्ठल, गोविन्द, मुकुन्द आदि समस्त संस्कृत मूल के होते रहे हैं। धर्म तथा सम्प्रदाय उनका कोई भी हो चाहे वे सनातनी हों या आर्यसमाजी, आस्तिक या नास्तिक शैव या वैष्णव, चाहे वे संस्कृत जानते हों या नहीं संस्कृत के सुललित शब्दों में नामकरण उनका अवश्य होता रहा है।

साहित्य

संस्कृत के विशाल साहित्य ने (जिसमें महाकाव्य रामायण से लेकर काव्य, नाटक आदि का सारा सर्जनात्मक साहित्य शामिल है। समस्त भारतीय भाषाओं पर जो प्रभाव छोड़ा है वह भी अद्भुत है। पूरे देश में, चाहे किसी भी भाषा में आप बोले, रावण को अहंकार का, भीम को शारीरिक बल का, सीता और सावित्री को पतिव्रता का तथा लक्ष्मण को आदर्श भाई का प्रतीक यदि माना जाता है तो उसका आधार संस्कृत काव्यों की परम्परा ही तो है। आज किसी वयोवृद्ध महापुरुष को किसी विशेष क्षेत्र का भीष्म पितामह कहा जाता है या ज्यादा नींद लेने वाले को कोई कुंभकर्ण कहता है तो यह संस्कृत की पुराकथाओं का देश के सामूहिक अवचेतन पर पड़ा प्रभाव ही तो है। ये प्रतीक देश की सभी भाषाओं में चलते हैं। चाहे बंगला हो, गुजराती हो या मलयालम हो। पंचतंत्र की कथाओं ने तो सारी भाषाओं में समान रूप से देश के नौनिहालों का मनोरंजन किया है और उन्हें एक सांस्कृतिक सूत्र में बांधा है।

जिस प्रकार भाषाओं के साहित्य में राम, कृष्ण, रावण, अर्जुन आदि की पुराकथाओं ने समस्त भाषाओं के कवियों को समान उपमान और प्रतिमान दिये हैं उसी प्रकार संस्कृत के काव्यशास्त्र ने समस्त भाषाओं को रस और अलंकार दिये हैं। मराठी में भी श्रृंगाररस होगा, मलयालम में भी वीर, अद्भुत रस होंगे, बंगला में भी करुणरस होगा। इसी प्रकार संस्कृत का छंदः शास्त्र सब भाषाओं में समान रूप से लोकप्रिय है। इसका प्रमुख कारण तो संस्कृत भाषा का सार्वदेशिक और सार्वकालिक काव्य की और शास्त्र की भाषा होना था किन्तु इसके कारण अन्य भारतीय भाषाओं ने भी संस्कृत का काव्य शास्त्र और छंदः शास्त्र इतने स्नेह से अपनाया कि मराठी से लेकर मलयालम तक के काव्यों में संस्कृत के वसंततिलका, शिखरिणी आदि छंद लिखे जाने लगे। जिस प्रकार आयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का हिन्दी महाकाव्य प्रियप्रवास, द्रुतविलंबित, शार्दुल-विक्रीडित आदि संस्कृत के छन्दों में निबद्ध है उसी प्रकार मराठी, गुजराती, मलयालम आदि भाषाओं के अनेक शास्त्रीय काव्यों में उनकी अपनी भाषाओं में संस्कृत छन्दों का गुम्फन

मिलता है। संस्कृत के देश भर में प्रसार के कारण उसका अन्य भाषाओं से सम्पर्क इतना घनिष्ठ हो गया कि जिस प्रकार उसके शब्द अन्य भाषाओं में घुलमिल गये उसी प्रकार उसकी अभिव्यक्ति भी इस तरह आत्मसात् हो गई कि एक परम्परा यह भी चल निकली कि दक्षिण की भाषाओं में काव्य रचना करने वाला एक ही छंद में मलयालम और संस्कृत साथ साथ लिखने लगा। जिस प्रकार गद्य और पद्य को मिलाकर चम्पू काव्य (दक्षिण की भाषाओं में तुलाल) लिखे जाते थे उसी तरह तेलगु, कन्नड़ या मलयालम की कविता में संस्कृत कविता मिलाकर काव्य लिखे जाने लगे थे। इस प्रकार के मेल (मिश्रण) को मणिप्रवाल शैली कहा जाता था। सभी भाषाओं को स्नेह की भागीरथी में नहलाकर इस धारा में जोड़ने वाली एक भाषा ने भावात्मक एकता के सूत्र में इन सब काव्यों के पाठकों को किस प्रकार बांधा है यह इससे स्पष्ट हो जाएगा।

ऐतिहासिक प्रभाव

चाहे किन्हीं भी कारणों से ऐसा हुआ हो संस्कृत को अमरभाषा और सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक भाषा माना जाने लगा। एक कारण तो यह रहा कि धर्म की प्रमुख धारा का साहित्य वेद, उपनिषद, सांख्य, न्याय, वेदांतादि षड्दर्शनों का साहित्य संस्कृत में ही था अतः उसका अनुशीलन सारे देश में होता था। दूसरा यह था कि पाणिनि ने वैज्ञानिक व्याकरण नियमों में बांधकर इसे ऐसा रूप दे दिया जिसके अनुसरण के कारण उपनिषदों से लेकर आज तक की संस्कृत का स्वरूप एक और प्रायः अपरिवर्तित रहा। हिन्दी और अंग्रेजी जैसी भाषाओं का स्वरूप तो एक दो सदियों में इतना बदल जाता है कि दो तीन सौ वर्ष पुरानी भाषा के साथ आज की भाषा का तालमेल बिठाना असम्भव हो जाता है। वौसर से पहले की अंग्रेजी मुश्किल से ८०० वर्ष पुरानी हुई है पर आज उसका समझना असम्भव है। ८०० वर्षों में अंग्रेजी पूर्णतः बदल गई। ८०० वर्ष पुरानी हिन्दी भी आज नहीं समझी जा सकती। पृथ्वीराज रासों को बिना टीका के कौन समझ सकता है ? किन्तु उपनिषदों की संस्कृत जो तीन-चार हजार वर्ष पुरानी है, शंकराचार्य की संस्कृत जो १२०० वर्ष पुरानी है तथा गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी की संस्कृत जो इस युग की है तीनों को उठाकर देख लें, तीनों में एक एक सहस्राब्दी का अन्तर है किन्तु ऐसा लगता है कि वे एक ही युग में लिखी गई हों। यह त्रिकालातीत अमरता संस्कृत की ऐसी अद्भूत विशेषता है जो विश्व की किसी भाषा में नहीं पायी जा सकती है। इस सार्वकालिकता के साथ साथ इसकी सार्वदेशिकता भी उल्लेखनीय है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक और सोमनाथ से ब्रह्मपुत्र तक ठीक उसी प्रकार संस्कृत लिखी जाएगी जैसी नेपाल, मारीशस् या जर्मनी में। इसे यह कालजयित्व और विश्वजनीनत्व दिया पाणिनि ने जिनका अनुसरण सभी देशों में और सभी कालों में किये जाने का एक अलिखित समझौता विद्वानों में हो गया था।

इसी कारण समस्त देश में यह परंपरा सुप्रतिष्ठित हो गई थी कि धर्म और दर्शन के शास्त्रीय ग्रन्थ संस्कृत में, विशेषकर संस्कृत पद्यों में लिखे जाते थे। महावीर और बुद्ध ने चाहे उपदेश लोक भाषाओं में दिये हो किन्तु उनके भी दर्शन ग्रन्थ विद्वानों द्वारा इसलिए संस्कृत में लिखे गये कि उन्हें सार्वकालिकता, सार्वदेशिकता एवं शास्त्रीयता प्राप्त हो। जैन दर्शन के मूर्धन्य ग्रन्थ बहुत बड़ी मात्रा में संस्कृत में लिखे गये। उमास्वाति का तत्त्वार्थाधिगमसूत्र जैसे शास्त्रीय जैन ग्रन्थ, प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसे विमर्श ग्रंथ संस्कृत में ही मिलते हैं। बौद्ध दार्शनिकों ने भी (जैसे असंग, बसुबंधु, चन्द्रकीर्ति) शास्त्रीय दर्शन ग्रन्थ संस्कृत में लिखे। उनके ललितविस्तर जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ केवल संस्कृत में ही मिले हैं। चिरकाल तक अपने वंश की कीर्ति अमर और अक्षुण्ण रहे इस उद्देश्य से समस्त राजवंशों ने अपना इतिहास अमर भाषा संस्कृत में लिखाया चाहे वे कश्मीरी हों जिन्होंने राजतरंगिणी जैसे ऐतिहासिक काव्य लिखाये या मेवाड़ी हों जिन्होंने राजप्रशस्ति जैसे काव्य शिलालेख के रूप में खुदाए। शिलालेखों और प्राचीन अभिलेखों की भाषा का अशोक के बाद प्रमुखतः संस्कृत में होना तो सुविदित है ही, बड़े दूरस्थ राजवंशों में पत्रकार भी संस्कृत में होता था। शिवाजी और मिर्जा राजा जयसिंह क्रमशः मराठी और राजस्थानी भाषी थे। वे आपस में किस प्रकार पत्राचार करते ? या तो फारसी में या संस्कृत में। स्पष्ट है कि फारसी विदेशी भाषा थी। जिस विषय पर इन्होंने पत्र लिखे वह गोपनीय था तो उन्होंने संस्कृत को चुना। सम्पर्क भाषा की यह भूमिका संस्कृत को सहज ही मिल गई थी। नैषधचरित के लेखक श्रीहर्ष ने लिखा है कि दमयंती स्वयंवर में विभिन्न प्रान्तों के राजा एकत्र हुए जिनकी भाषाएं अलग अलग थीं। तव उन्होंने आपस में संस्कृत भाषा में बातचीत की अन्योन्य-भाषाऽनवबोध- भीतेः संस्कृत्रिमाभिर्व्यवहारवत्सु। सम्पर्क भाषा की इस सहज भूमिका ने संस्कृत को सारे देश में शास्त्रार्थ की भाषा भी बना दिया था, धर्म की भाषा और संस्कृत की भाषा भी बना दिया था। आज तक भी पूरे देश में समस्त हिन्दु धार्मिक काय इसी वैदिक भाषा में सम्पन्न होते हैं। इस भाषा के मंत्रों और स्तोत्रों के प्रति सबकी समान निष्ठा है। यह ज्योतिष की भाषा तो है ही, सही मायनों में पुस्तकालय भाषा की इसने सदियों तक भूमिका निभाई थी। आयुर्वेद, तंत्र, मंत्र सबके ग्रन्थ इसी में लिखे जाते थे।

धर्मनिरपेक्ष भाषा

ऊपर के विवरण का यह तात्पर्य नहीं लिया जाना चाहिए कि धर्म की भाषा होने के कारण यह हिन्दुओं या सनातनियों की भाषा मान ली गई थी। यह तो सब है कि सनातन धर्म और आर्य समाज जैसी परम्पराओं में इस भाषा का पूर्ण प्रयोग रहा किन्तु यह उन्हीं तक सीमित नहीं रही। बौद्धों, जैनों, सिखों ने ही नहीं मुसलमानों ने भी उपनिषदों और दर्शन की भाषा होने के नाते इसका इतना अनुशीलन किया कि इन सभी वर्गों में सैकड़ों संस्कृत विद्वान हुए जिन्होंने अनेक ग्रन्थ संस्कृत में लिखे। इसकी यह धर्म-निरपेक्ष भूमिका भी अपने आप में अद्भुत है। चूंकि इस अमर भाषा में

लिखा कोई भी सम्प्रदाय या इतिहास अमर हो जाएगा ऐसी धारणा थी इसलिए मुगल बादशाहों ने भी संस्कृत विद्वानों को अपने दरबारों में रखा और अपनी कीर्ति संस्कृत में निबद्ध करवाई। अकबर के समय में अल्लोपनिषद लिखी गई, जिस पर इस्लाम धर्म और कुछ कुरान की शैली का स्पष्ट प्रभाव है। उधर दाराशिकोह जैसे शाहजादों ने और अब्दुर्रहीम खानखाना जैसे सामन्तों ने इसका गहन अध्ययन किया। वेदों, उपनिषदों, गीता आदि का अपनी अपनी भाषाओं में अनुवाद किया और करवाया। खानखाना संस्कृत के बहुत अच्छे कवि थे। उन्होंने खेटकौतुकम् त्रयस्त्रिंशद्योगावली जैसे ज्योतिष ग्रन्थ तो संस्कृत में लिखे ही हैं गंगा की स्तुति में गंगाष्टक इतना अच्छा लिखा है कि वह संस्कृत स्तोत्रों की परम्परा का उत्कृष्ट रत्न बन गया है। कश्मीर में जैनुल आबदीन (१४वीं सदी) जैसे अनेक संस्कृत प्रेमी शासक हुए हैं। रुद्ध कवि ने खानखानाचरित्रचम्पू संस्कृत में इसलिए लिखा था (१६०९ ई०) कि खानखाना को महापुरुषों की श्रेणी में पूरा देश गिनने लगे। आज भी गुलाम दस्तगीर जैसे मुस्लमान धर्म गुरु मौजूद हैं जो संस्कृत के अच्छे विद्वान हैं और संस्कृत में ही बोलते हैं। यह धर्मनिरपेक्ष एकता की एक भाषा और सम्पर्क भाषा की भूमिका इस भाषा ने सदियों से धारण कर रखी है।

प्रान्तीयता और क्षेत्रीयता यदि किसी भाषा को छूकर भी नहीं गई तो वह संस्कृत ही है। सदियों से हम मम्मट और कल्हण जैसे कश्मीरियों, जगन्नाथ जैसे कि दक्षिणियों, भट्टोजि दीक्षित जैसे मराठियों, जयदेव जैसे उत्कलियों को मूर्धन्य संस्कृत आचार्य के रूप में पढ़ते आ रहे हैं। सारा देश उनके प्रति श्रद्धावनत है। यह कभी किसी ने नहीं सोचा कि वे किस प्रान्त के थे। कालिदास का तो आज तक यह पता नहीं कि वे कहाँ के थे। पूरे देश के होने की भावना इसी भाषा की देन है। जिस प्रकार गीता को, चाणक्य के अर्थशास्त्र को या शंकराचार्य के स्तोत्रों को किसी प्रान्त के साथ नहीं जोड़ा जा सकता, उसी प्रकार इस भाषा को किसी प्रान्त की नहीं माना जा सकता। इसके शास्त्र भारत की सभी लिपियों में लिखे गये हैं, भाषा संस्कृत ही रही है। जिस प्रकार इसने प्रान्तों और शताब्दियों के कालखण्डों की सीमा का अतिक्रमण कर लिया उसी प्रकार धर्म की सीमाओं को भी यह लांघ गई थी। सही अर्थों में पूरे देश की राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक एकता की, सारे भारत की भावनात्मक इकाई की यह प्रतिनिधि भाषा बन गई थी और आज भी है। यही कारण है कि चाहे हिन्दी जैसी भाषाओं के बारे में किसी प्रान्त में कुछ विवाद हो किन्तु संस्कृत के नाम पर कभी कोई विवाद नहीं रहा। राजनीति की घृणित दुर्गन्ध अब वहां भी अपनी सडांद फैलाने लगे तो यह देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य होगा।

योगः कर्मसु कौशलम्

राष्ट्रपति-सम्मानितःप्रो. वैद्यः बनवारीलालगौड़ः
पूर्व-कुलपतिः
डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालयः, जोधपुरम्

भारतवर्षे प्राचीनकाले ज्ञानविज्ञानयोरुत्कृष्टरूपेण संस्थितिरासीत् । तत्र प्राथमिकरूपेण अपौरुषेयस्वरूपात्मकानां वेदानामुपस्थापनमुल्लेखनीयं वर्तते। ज्ञानविज्ञानयोः अगाधनिधयो ह्येते वेदाः अद्यापि न केवलं भारतवर्षेऽपितु सम्पूर्ण एव विश्वे समादृताः सन्ति । तस्मिन् समय एव वेदानधिकृत्य तदङ्गतया शिक्षाकल्पछंदनिरुक्तव्याकरणज्योतिषात्मकानां षण्णां सङ्कल्पना सञ्जाता । तदनन्तरमपि चानेकविषयाणां विवेचनात्मिका सुनिर्मितिः महर्षिभिः कृता संस्थापिता च।

महर्षयश्च ते बुद्धिस्मृतिज्ञानतपोनिवासाः प्राणभृताञ्च शरण्या आसन् | तेषां बुद्धिः ऊहापोहवती, स्मृतिश्चातीतार्थविषयज्ञानस्वरूपात्मिका आस्ताम् । महर्षिभिः स्मृतमूहापोहतया च सुनिर्णीतं सिद्धान्तरूपेण संस्थापितञ्च तज्ज्ञानं शाश्वतं वर्तते, यतो हि सिद्धान्तो नाम स यः परीक्षकैर्बहुविधं परीक्ष्य हेतुभिश्च साधयित्वा स्थाप्यते निर्णयः| सर्वेषामेतेषां विषयाणां स्मरणं प्रचरणं प्रसरणं प्रवर्धनञ्चाप्तोपदेश-प्रत्यक्षानुमानयुक्त्यादिभिः सञ्जातम्।

शनैः शनैः विभिन्नान् विषयानधिकृत्य बहूनि शास्त्राणि विरचितानि । क्रमेऽस्मिन् पतञ्जलिद्वारा योगसूत्रं विरचितम्, तत्तु पातञ्जलयोगसूत्रम् इति नाम्ना प्रसिद्धम् । यद्धि चित्तनिरोधार्थं सैद्धान्तिकरूपेण प्रायोगिकरूपेण चाद्याप्युत्कृष्टतमं सफलतमञ्च दर्शनात्मकं शास्त्रमस्ति । तन्त्रेऽस्मिन् योगस्य सर्वाङ्गसम्पूर्णं वर्णनं सूत्ररूपे व्यवस्थितमस्ति । तत्र कथितमस्ति यद् " योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" । आयुर्वेदस्य प्रसिद्धायां चरकसंहितायां योगवर्णनक्रमे महर्षिश्चरकः कथयति यत्-

आत्मेन्द्रियमनोर्थानां सन्निकर्षात् प्रवर्तते।
सुखदुःखमनारम्भादात्मस्थे मनसि स्थिरे।।

निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते।

सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगमृषयो विदुः ।। (च.शा.1/138-139)

अनारम्भादिति विषयोपादानार्थं मनसाऽनारम्भात् | आत्मस्थे मनसीति विषये निवृत्ते केवलात्मज्ञानस्थे| स्थिरे इति अचले, आत्मज्ञानप्रसक्त एवेति यावत्| तदुभयमिति सुखदुःखे| वशित्वं तु योगिनामष्टविधमैश्वरं बलम् | सशरीरस्येतिपदेन शरीरेण सहैव वशित्वं भवतीति दर्शयति।

अष्टविधमैश्वरं बलं तु यथा-

आवेशश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः क्रिया।

दृष्टिः श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम्।।140।।

इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनां बलमैश्वरम्।

शुद्धसत्त्वसमाधानात्तत् सर्वमुपजायते।।(च.शा.1/140-141)

शुद्धसत्त्वसमाधानादिति नीरजस्तमस्कस्य मनस आत्मनि सम्यगाधानात् | शुद्धसत्त्वसमाधानं तु योगादेव हि जायते। एषा हि समाधिस्वरूपात्मिका स्थितिः। योगे त्वष्टाङ्गानि भवन्ति, तद्यथा- यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान- समाधयः। एतेष्वपि यमः पंचविधः- अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहाश्चैते यमाः। एभिर्यमैः मनसः नियन्त्रणङ्कुर्वन्ति साधकाः। अत्र यमस्य विशिष्टा व्युत्पत्तिः करणीया, यथा हि- यच्छति नियच्छति इन्द्रियग्राममनेन इति यमः। अमरकोषेऽपि निर्दिष्टं यत्- शरीरसाधनापेक्षं नित्यं यत् कर्म तद् यमः। एतेन स्पष्टम्भवति यत् शरीरकर्मणां नियन्त्रणे यमस्य कार्मुकत्वं वर्तते। नियमे तु वैशिष्ट्यमिदं वर्तते यत् नियमकर्म त्वनित्यं भवति, यद्धि विशिष्टे समये सोद्देश्यं क्रियते। नियमश्चापि पंचविधः, यथा हि- शौच-संतोष- तपः- स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि च। एभिः मनः नियम्यते।

आसनानि तु विशिष्टे योगरूढेऽर्थे प्रयुज्यन्ते योगशास्त्रे, यद्यपि व्युत्पत्तिस्तु सैवोपयुक्ता या हि "आस्यतेऽत्र इति आसनम् " इति। योगशास्त्रे चतुरशीतिः सङ्ख्यात्मकान्यासनानि इति केचिद्, अन्ये तु कथयन्ति यदासनानि तु बहुविधानि भवंति। सैद्धान्तिकरूपेण त्वासनानि द्विविधान्येव, यथा हि- गतिशीलात्मकानि स्थिराणि च। क्लिष्टप्रक्रियातः सम्पद्यमानानि बहून्यासनानि हठयोगात्मकानि सन्ति, किन्तु प्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिषूपयुज्यमानान्यासनानि तु सरलतया सम्पद्यमानानि भवन्ति।

विधिना सम्पद्यमानः प्राणायामस्तु प्राथमिकरूपेण पूरक-रेचक-कुंभकात्मको भवति । विविधस्वरूपेण क्रियमाणस्त्वेषोऽष्टविधः, यथा हि- अनुलोमप्राणायामः- विलोमप्राणायामः, भस्त्रिकाप्राणायामः, कपालभातिप्राणायामः, शीतकारीप्राणायामः, भ्रामरीप्राणायामः, मूर्च्छाप्राणायामस्तथा लावणीप्राणायाम इति।

प्रत्याहारः-

यदा ह्यभ्यस्तः प्राणायाम इन्द्रियाणि भोगेभ्यः दूरं करोति तदनन्तरमिन्द्रियाणां कार्मुकत्वमन्तःस्थं करोति, स एवाभ्यस्तः प्राणायामः तस्य कार्मुकस्वरूपस्य स्थिरत्वमापादयति, एष एव हि क्रियाव्यापारः प्रत्याहारः। अनेन विषयाः (इन्द्रियार्थाः) विनश्यन्ति। इन्द्रियाणि च नियन्त्रितानि भवन्ति। यम-नियम-आसन- प्राणायामैः प्रत्याहारस्य संसिद्धिर्भवति, ओजसश्च वृद्धिर्भवति, आत्मविश्वासोऽपि वर्धते। प्रत्याहारेण धारणायाः संस्थापने सहायता मिलति । अत एव प्राणायामधारणयोः मध्ये योजकस्त्वेषः प्रत्याहारः।

धारणा –

यदा हि यमादिभिः मनसः चञ्चलता विनश्यति मनसश्च स्थिरत्वं हृदये नाभौ नासाग्रे अन्ये वा स्थानविशेषे भवति तत्स्थिरत्वमेव धारणा। कर्मण्यस्मिन्निन्द्रियाणि विषयेभ्योऽपवार्य चित्ते स्थिरीक्रियन्ते।

ध्यानम्-

मनसोऽनपेक्षितान् विचारान्निष्कृष्य शुद्धानामावश्यकानां विचाराणां संस्थापने ध्यानं सहायकं समर्थञ्च भवति। अनेनात्मिकशक्तेर्विकासो मानसिकीं शान्तिञ्चानुभूयते साधकः।

समाधिः-

यदा हि निष्णातः साधकः ध्यानक्रियायां पूर्णरूपेण निमग्नो भवति तदा सः समाधिस्थितिमवाप्नोति। समाधौ तु विषयेभ्यो निवर्त्यात्मनि मनसो नियमनं भवति। समाधेरनन्तरमुदेति प्रज्ञा, एतदेव योगस्यान्तिमं लक्ष्यम्।

समाधिः द्विविधः- सविकल्पकः निर्विकल्पकश्च।

पातंजलयोगसूत्रे तु सम्प्रज्ञातः असम्प्रज्ञात इति द्विविधः समाधिः, सम्प्रज्ञातस्य पुनश्चतुर्विधत्वं ख्यापितम्- वितर्कानुगमसमाधिः, विचारानुगमसमाधिः, आनन्दानुगमसमाधिः, अस्मितानुगमसमाधिश्च।

पुनः पुनरभ्यासेन यदा समाधिप्रक्रियायां मनसा किञ्चित् कालं यावद् विचाराणां समाप्तिर्भवति तदा त्वेषः असम्प्रज्ञातसमाधिरिति कथयति योगनिष्णातो महर्षिः पतञ्जलिः।

केचित् कथयन्ति यत् समाधिस्तु षड्-विधः, तद्यथा- ध्यानयोगसमाधिः, नादयोगसमाधिः, रसानन्दयोगसमाधिः, लयसिद्धयोगसमाधिः, भक्तियोगसमाधिः, राजयोगसमाधिश्च।

किमर्थं क्रियते योगः ? इति प्रश्नस्येदमुत्तरमस्ति यत्-

चतुर्विंशतितत्त्वात्मकं हीदं शरीरम्, तत्र च संक्षेपेणेदं कथनमपेक्षितं यत्- शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगस्त्वायुरिति सम्बोधनेन सम्बोध्यते।

शरीरं पञ्चमहाभूतविकारात्मकमात्मनो भोगायतनम्, इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि, सत्त्वं मनः, आत्मा ज्ञानप्रतिसन्धाता, एषां सम्यगदृष्टयन्त्रितो योगः संयोगः| यद्यपि शरीरग्रहणेनैव इन्द्रियाण्यपि लभ्यन्ते, तथाऽपि प्राधान्यात्तानि पुनः पृथगुक्तानि| अयं च संयोगः संयोगिनः शरीरस्य क्षणिकत्वेन यद्यपि क्षणिकस्तथाऽपि सन्तानव्यवस्थितोऽयमेकतयोच्यते| शरीरादिसंयोगरूपमेव त्वायुः परमार्थतः; एवम्भूतसंयोगाभावे मरणमायुरुपरमरूपं भवति, मृतशरीरे तु चेतसोऽभावादायूरूपसंयोगाभावः।

एषः संयोगस्त्वात्मनो बन्धस्थितिः , संयोगेऽस्मिन् द्विविधात्मकानां सुखदुःखात्मकानां वेदनानामनुभूतिर्भवति । वेदनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः| योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्| तत्रापि मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा भवति योगश्च मोक्षप्रवर्तको विद्यते।

योगविषयस्य बहुविधं वर्णनं श्रीमद्भागवतगीतायां भगवता श्रीकृष्णेन कृतम्। द्वितीयेऽध्याये भगवान् श्रीकृष्ण उपदिशति यत्-

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।श्रीमद्भागवतगीता. 2.50।।

भगवताऽत्र निर्दिष्टं यत् समत्वयोगविषयकबुद्धिसम्पृक्तः पुरुषः यदाऽन्तःकरणस्य शुद्ध्या शुद्धज्ञानप्राप्त्या च उभे सुकृतदुष्कृते (पुण्यपापकर्मणी) त्यजति तदा सोऽस्मिन्नेव लोके कर्मबन्धनाद्विमुच्यते। तस्माद् हे अर्जुन! योगाय युज्यस्व, यतो हि योगः कर्मसु कौशलम् । अर्थात् स्वधर्मरूपे कर्मणि निरतस्य पुरुषस्य ईश्वरसमर्पितया

बुद्ध्या समुत्पन्नः यो हि सिद्ध्यसिद्धिविषयकः समत्वभावोऽस्ति तदेव कौशलम् (कुशलता) वर्तते। अत्रैतदपि कौशलं वर्तते यद्यानि कर्माणि स्वभावादेव बन्धनकारकाणि सन्ति तानि समत्वबुद्धिप्रभावात् स्वं बन्धनकारकं स्वभावं त्यजन्ति, अतः समत्वबुद्धिः परमावश्यकी। एषः हि योगः समत्वबुद्धिकरणे समर्थो भवति। तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्, इति भगवद्वचनं समत्वबुद्धिकरणे निर्देशात्मकमस्ति।

वर्तमानकाले विश्वस्य राजनैतिक-मञ्चे वैशिष्ट्यमेतद्वर्तते यद् भारतदेशः विंशतिसङ्ख्यात्मकैः विशिष्टैः देशैः विषयविशेषमधिकृत्य संस्थापितस्यैकस्य समूहस्य शीर्षस्थानेऽध्यक्ष्यत्वेन राजते , अस्य समूहस्य नाम "G20" इति वर्तते। अस्य विशिष्टोद्देश्यन्त्वेतदस्ति यत् पर्यावरणं प्रति याः जागरणशीलाः प्रथाः सन्ति तासां प्रथानां परम्पराणाञ्च प्रचलने जीवनस्योपयोगिस्वरूपेण य उपभोगः भवेत् तस्मिन्नुपभोगे स्थायित्वं भवेदेतदर्थं प्रयासः करणीयो वर्तते। तत्र ह्येषः विषयोऽस्ति यत्-

" एका धरित्री एकः परिवारः एवं भविष्यमप्येकमेव भवेदिति "। भारतस्य लक्ष्यमस्ति यत् सर्वाः हि व्यवस्थाः नियमेष्वाधारिताः भवेयुः, सर्वत्र शान्तिर्भवेत् सर्वेभ्यश्च न्यायपूर्णस्य विकासस्याभिवर्धनं भवेदिति। एतानि सर्वाणि कर्माणि शान्तेन चित्तेनैव शक्यानि सन्ति। चित्तस्य शान्तत्वं शुद्धत्वं नियन्त्रणञ्च योगमाध्यमेन सरलतयैव भवन्ति। अत एव सर्वत्र योगस्यापि प्रचरणं प्रसरणञ्च भवेदिति योगदिवसस्याप्युद्देश्यमस्ति।

राजस्थान में रामभक्त हनुमान के प्रसिद्ध मन्दिर

श्रीमती माधुरी शास्त्री
वरिष्ठ साहित्यकार
सी/८, पृथ्वीराज रोड, जयपुर

महाराणाप्रताप जैसे परमवीरों की भूमि राजस्थान ने अनेक शताब्दियों से अंजनीनन्दन रामभक्त महावीर हनुमान के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा अनेक रूपों में व्यक्त की है। राजस्थान की धरा पर गाँव गाँव, गली गली और शहर शहर में हनुमान के मन्दिर देखे जा सकते हैं। राजस्थान के साहित्यकारों ने हनुमान की स्तुति में संस्कृत और हिन्दी से लेकर राजस्थान की बोलियों तक सभी माध्यमों से रचनाएँ की हैं, काव्य और स्तोत्र लिखे हैं, राजस्थानवासी अपने बालकों के नाम बजरंगलाल, हनुमत्प्रसाद, महावीर आदि रख कर गौरव का अनुभव करते हैं। घर-घर में रामायण के सुंदरकाण्ड, रामचरितमानस के सुंदरकाण्ड और हनुमान चालीसा आदि के प्रवचन, पारायण, कीर्तन और जप होते देखे जा सकते हैं।

हनुमान मन्दिरों की छटा राजस्थान के नगरों और ग्रामों में सदियों से रामभक्तों को आल्हादित करती रही है। वैसे तो क्षेत्रपाल और जनरक्षक के रूप में गाँव- गाँव में हनुमान के चबूतरे देखे जा सकते हैं जहाँ वीरालंकरण सिंदूर से सजी हनुमान की एक मूर्ति ग्रामवासियों को सब तरह की विपदाओं से बचाने वाली 'आशीष' के रूप में बच्चे-बूढ़े, सभी के द्वारा पूजी जाती है, किंतु राजस्थान के अनेक स्थानों पर ऐसे हनुमानमंदिर भी हैं, जो विशाल तीर्थस्थल के रूप में सदियों से यात्रियों (जनसमुदाय) के आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं।

सीकर के निकट चूरू जिले में सालासर नामक गाँव में अठारहवीं सदी में बना बालाजी का मन्दिर विराजमान है जिसके कारण यह ग्राम 'सालासर धाम' बन गया है। आज यहाँ विशाल मन्दिर परिसर के अतिरिक्त अनेक धर्मशालाएँ आदि तो हैं ही, अनेक शिक्षा संस्थाएँ भी कार्यरत हैं। संस्कृत के स्नाकोत्तर महाविद्यालय में छात्राएँ भी संस्कृत का अध्ययन करती हैं। यहाँ की पूजा व्यवस्था दाधिमथ ब्राह्मणों द्वारा सँभाली जा रही है। इस मंदिर के संस्थापक श्री मोहनदास जी की जीवनगाथा अब प्रसिद्ध हो गयी है जो दो-तीन सदियों से प्रसारित भी हो रही है। किस प्रकार मोहनदास जी 'वचनसिद्ध' और' 'त्रिकालदर्शी' हो गये थे। उनकी बहन कालीबाई ने उनका विवाह कराना चाहा तो उन्हें यह आभास हुआ कि लडकी जिसके साथ उसका विवाह तय हुआ है वह मर गई है। तदनंतर वे अविवाहित रहे। उनके द्वार पर कोई साधु भिक्षा के लिए आया, उसे वाँछित सत्कार मिला। उसने वहाँ ऐसी खाट पर सोना चाहा, जिस पर कोई न लेटा हो। वह साधु स्वयं हनुमान जी थे। इनकी प्रेरणा से मारवाड के एक ग्राम आसोटा में (जो लाडनूँ और जसवंतगढ के बीच मारवाडी गाँव है) अचानक

हल के नीचे से प्राप्त एक मूर्ति को यहाँ मँगवाकर मोहनदास जी ने श्रावण शुक्ल दशमी संवत् 1811 को उसकी सालासर में प्राणप्रतिष्ठा कर स्थापना की। धीरे धीरे इस मूर्ति के अद्भुत चमत्कार ग्रामवासियों को दिखने लगे। अत: यहाँ विशाल मंदिर बना, अनेक सेवागृह बने, धर्मशालाएँ बनीं, साथ में पाठशालाएँ भी बनीं।

मंदिर में हनुमान जी का श्रीविग्रह सोने के सिंहासन पर विराजमान है। ऊपर श्रीराम का दरबार है, मंदिर के आँगन में एक जाल का वृक्ष है, जिसमें भक्तगण नारियल बाँध देते हैं जिससे उनकी मनोकामना पूरी हो जाती है।

जयपुर, बाँदीकुई, भरतपुर के बीच मेहंदीपुर ग्राम के बालाजी लगभग एक सहस्राब्दी से सब तरह से विपत्तियों, विशेषकर भूत-प्रेत आदि की 'ऊपरी बाधाओं' के निवारण के लिए प्रसिद्ध है। इन्हें ही 'मेहंदीपुर के बालाजी' कहा जाता है, किंतु जब से प्रेतबाधा आदि से पीडित व्यक्ति यहां आकर भूत बाधा से मुक्ति पाने की विशिष्ट कामना रखने लगे हैं तब से यहाँ स्थापित भैरवनाथ यहाँ के विशिष्ट उपास्य बन गये हैं। उनकी धूनी यहाँ देखी जा सकती है जिसके चारों ओर सिर धुनते हुए, प्रेतबाधा से मुक्ति की कामना वाले भक्त देखे जा सकते हैं। कहा जाता है कि यहाँ के महंत जी के किसी पूर्वज को हनुमान जी ने स्वप्न में दर्शन देकर यह कहा कि मेरी अमुक स्थान पर जो मूर्ति है उसकी स्थापना करवाओ, मंदिर बनवाओ। इस आज्ञा के अनुपालन में जो मंदिर बना तथा उसके आसपास जो मंदिर बने, उनके कारण मेहंदीपुर ग्राम प्रसिद्ध हो गया।

भूतबाधा और अनिष्ट को दूर करने वाले देव के रूप में जिस प्रकार भैरव जी प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार हनुमानजी भी हैं। इसका प्रमाण राजस्थान के अनेक मंदिरों में मिलेगा। हाडौती क्षेत्र में, कोटा में चम्बल नदी पर, 'गोदावरीधाम' में स्थित हनुमानजी सब तरह की बाधाओं का शमन करने वाले, आशीर्वाद प्रदाता देवता के रूप में पूजे जाते हैं। अब तो चम्बल की पाल पर एक विशाल क्षेत्र में यह मंदिर 'अमर निवास' नाम के विशाल भवन के कारण प्रसिद्ध है। जहाँ धर्म संस्कृति शिक्षा आदि के अनेक कार्य किए जाते हैं। वहाँ स्वर्गीय गोपीनाथ भार्गव नामक एक समर्पित भक्त के नेतृत्व में बींसवीं सदी के अंत में अनेक प्रवचन विद्वत् संगोष्ठी आदि आयोजित हुई, संस्कृत शिक्षा के अनेक उपक्रम किए गए।

राजस्थान की राजधानी जयपुर में अनेक हनुमान मंदिर सदियो से नागरिकों की श्रद्धा का केंद्र बने हुए हैं। नगर के सभी प्रवेश द्वारों पर विशिष्ट मारुति मंदिर बनाये गये थे, क्योंकि क्षेत्रपाल अर्थात् क्षेत्ररक्षक देवता के रूप में हनुमान जी की मान्यता सदियों से चली आ रही है। जयपुर के पश्चिम द्वार पर 'चांदपोल' नाम से जो प्रवेश द्वार बना हुआ है उस पर अनिष्ट निवारक, मृत्यु को भी वश में करने वाले देवता के रूप में हनुमान का मंदिर बना हुआ है। जयपुर नाम की सुनियोजित नगरी के रूप में स्थापना तो सवाई जयसिंह ने सन् 1727 ईस्वी में की थी उससे पूर्व राजधानी आमेर थी, किन्तु आमेर के राजा सवाई मानसिंह प्रथम (जो बादशाह अकबर के सिपहसालार थे) द्वारा सोलहवीं सदी में एक हनुमान मूर्ति आमेर में स्थापित की गई थी, वही द्वारपाल देवता के रूप में सवाई जयसिंह ने यथावत् रखी और आज भी पूजी जाती है। इसके लिए एक दोहा प्रसिद्ध है- "सांगानेर को सांगो बाबो जयपुर को हनुमान। आमेर की शिला देवी, लायो राजा मान॥"

जयपुर के उत्तरी द्वार पर 'सांगानेरी गेट' बना हुआ है जिसके रूप में भी द्वाररक्षक हनुमान की मूर्ति और मंदिर विराजमान है। इन पुराने मंदिरों की मान्यता तो चली आ रही है, आधी सदी पूर्व स्थापित एक मारुति मंदिर ने आज जो मान्यता, विशाल स्वरूप और विश्वजनीन आकर्षण प्राप्त कर लिया है वह और भी उल्लेखनीय हो गया है। यह मंदिर है जयपुर दिल्ली बाईपास पर एक बड़े भूखण्ड पर बना हुआ हनुमानजी का मंदिर जो आजकल 'खोले के हनुमान' के रूप में प्रसिद्ध हो गया है। इसके संस्थापक श्री राधेलाल चौबे (1929-2009) थे, जिन्होंने नरवरदासजी का खोला नामक परिसर में शैलखण्ड पर उत्कीर्ण मारुति मूर्ति को स्थापित कर सन् 1961 ई. में एक मंदिर बनवाया जो धीरे धीरे भक्तों के आकर्षण का केंद्र बन गया। अब तो वहाँ राम मंदिर, प्रवचनशाला, भोजनशालाएँ आदि अनेक विशाल भवन भी बन गये हैं। सरकारी अनुदान से परिसर के चारों ओर उपवन, मार्ग, पार्किंग स्थल, पर्यटन स्थल, दुकानें आदि बनाये गये हैं और बनाये जा रहे हैं जिनके कारण यह पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र भी बन गया है।

जयपुर से कुछ दूर है विराट नगर जो आज जयपुर दिल्ली के बीच अलवर के पास स्थित है और जिसका सहस्राब्दियों का इतिहास विश्वप्रसिद्ध है, क्योंकि यही थी मत्स्य देश की राजधानी जिसके राजा विराट के दरबार में पांडवों ने अज्ञातवास का एक वर्ष इसी स्थान पर वेष बदलकर बिताया था। इसी विराट नगर में (जो आजकल बैराठ कहलाता है) अशोक के शिलालेख मिले थे। यहां पहाड की चोटी पर वज्रांगदेव का विशाल मंदिर बना हुआ है जिसमें हनुमानजी की विशाल मूर्ति स्थापित है। यह नराकृति देवमूर्ति है जो पंचखंडपीठाधीश्वर राष्ट्रभक्त, गौ ब्राह्मण हितैषी श्री रामचंद्र 'वीर' महाराज ने इस चोटी पर स्थापित की। यह मूर्ति साढ़े सात फीट ऊँची संगमरमर निर्मित है। यहाँ माघ शुक्ल त्रयोदशी को प्रतिवर्ष प्राण-प्रतिष्ठा महोत्सव मनाया जाता है, विशाल मेला लगता है। पंचखंडापीठाधीश्वर आचार्य श्री धर्मेंद्र महाराज जी जो विश्व हिंदू परिषद् से निरंतर जुडे रहे हैं, प्रसिद्ध प्रवचनकर्ता कवि एवं लेखक थे । उन्होंने इनकी महिमा को बहुत बढाया। आजकल उन्हीं के सुपुत्र आचार्य सोमेन्द्र इस परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं। इस मन्दिर की यह महिमा है कि एक हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित इस मन्दिर के दर्शन हेतु हजारों सीढियाँ चढ़कर दर्शनार्थी पहुँचते हैं।

नागौर जिले में एक अन्य प्राचीन मन्दिर है जो पहाड़ी पर स्थित है और बड़ा गाँव के बालाजी के नाम से प्रसिद्ध है। बालाजी के नाम से ही रेलवेस्टेशन भी बहुत पहले से स्थित है। लगभग चार सौ वर्ष पूर्व एक सन्त शुकदेवजी पुरी जी द्वारा स्थापित इस मन्दिर की अनेक गाथाएँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि पुरी ने चूरू जिले के गोपालपुरा गाँव में तपस्या की थी। वहाँ उन्हें हनुमानजी द्वारा आशीर्वाद प्राप्त हुआ। उन्होंने अनेक वर्षों तक उस मूर्ति की पूजा भी की। पुरीजी को किसी कारणवश नागौर के एक गाँव में आकर बसना पड़ा तो उन्होंने हनुमान से प्रार्थना की कि - "हे हनुमन्! आप यहाँ मेरी सेवा लेने के लिए पधारें और यहीं निवास करें तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ" कहते है कि हनुमानजी ने दर्शन देकर कहा- "ठीक है, मैं इस गाँव में ही प्रकट हो जाऊँगा। स्वामीजी और उनके अनुयायी चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को वहाँ की पहाडी के पास बैठ कर हनुमानजी का ध्यान करने लगे। अचानक पहाडी में एक ध्वनि के साथ दरार पड़ गई। वहीं एक पाषाण पर हनुमानजी का विग्रह अंकित दिखलाई दिया। उस मूर्ति को वहीं प्रतिष्ठापित कर दिया गया। तभी से यह स्थान बड़ा गाँव के बालाजी के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

जयपुर में ही एक प्रसिद्ध मन्दिर है' काले हनुमानजी का जो बड़ी चौपड़ से उतरते हुए चाँदी की टकसाल के समीप स्थित है। इस मन्दिर की मूर्ति(विग्रह) की अपनी ही रौनक और आभा है। यहाँ दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती है। विशाल परिसर और भोग के लिए एक रसोईघर तथा दर्शनार्थियों के लिए विश्राम की उचित व्यवस्था हैं।

जयपुर से 43 किलोमीटर दूर चौमूँ के निकट सामोद में 600 वर्ष पुराना 'वीरहनुमानजी का मन्दिर है। यह पहाड़ी पर ऊंचाई पर स्थित है। इस मन्दिर पर आवागमन के लिए भक्तों को एक हजार पचास सीढ़ियाँ पार करनी पड़ती है। लेकिन अब तो सुविधा के लिए 'रोपवे' भी बन गया है। बालाजी ने 600 वर्ष पूर्व पूर्व स्वयं अपने भक्त को स्वप्न में दर्शन देकर आदेश दिया कि मेरी प्रतिष्ठा कराई जाए। तब हनुमानजी की 6 फुट की प्रतिमा स्थापित की गई। बालाजी की यह महिमा है कि वे सब तरह की बीमारियाँ दूर करते हैं साथ ही भक्तों की मनोकामना पूर्ण करते हैं। मनोकामना के लिए मन्दिर में थैलियाँ बाँधी जाती है। इस मन्दिर द्वारा किया गया तिलक वरदायी माना जाता है। मन्दिर में निरन्तर नारियल चढ़ते रहते हैं। उन्हीं का भोग प्रसाद मिलता है। दोनों समय आरती होती है। वीर हनुमानजी की भव्य प्रतिमा देख भक्तजन विभोर हो जाते हैं।

अतुलित बलधामं हेमशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।।

बीकानेर में रतनबिहारीजी के वैष्णव मन्दिर के पास हनुमानजी का मन्दिर भी स्थित है। यहाँ प्रत्येक मंगलवार को भक्तों की भीड़ रहती है। अनेक आयोजन होते हैं। इन्हें इच्छाओं का पूर्ण करने वाला माना जाता है।

बीकानेर के पास सूडसर स्टेशन से दस मील दूर हनुमानजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसके दर्शनार्थ जैनसमाज के लोग भी आते हैं। प्रति वर्ष विशाल मेला लगता है।इसे 'पूरनासर' हनुमानजी के नाम से मान्यता प्राप्त है।

नागौर के पास डेगाना तहसील के बडू गाँव में हनुमानजी का मन्दिर है जिसमें हनुमानजी की तीन मूर्तियाँ है- दास हनुमान की, वीर हनुमान की, और भक्त हनुमान की। यहाँ भी वर्ष में एक बार मेला लगता है।

लूणी नदी के तट पर बाडमेर जिले में क्षीरपुर (खेड़) गाँव में हनुमानजी का मन्दिर है जिसमें विशालमूर्ति है। यहाँ आदिवासी अपने बालकों के मुंडन संस्कार कराने आते हैं। अपने आराध्य को 'खोड़ियाबाबा' कह करप्रणाम करते हैं।

श्रीनाथजी के धाम नाथद्वारा में चारों दिशाओं में हनुमानजी के मन्दिर हैं। पूर्व में सिंहाड़ के हनुमानजी, पश्चिम में बड़ी बाखर के, उत्तर में छावनी दरवाजा के और दक्षिण में चौबेजी की बगीची में हनुमान जी प्रतिष्ठापित हैं। कहते हैं कि पुष्टिमार्गीय आचार्यों ने क्षेत्ररक्षक के रूप में स्वयं इन मारुति मूर्तियों की स्थापना करवायी थी।

सवाईमाधोपुर में भी हनुमानजी का मन्दिर है। इसका भव्य निर्माण उन्नीस सौ पचास में हुआ, किंतु उससे पूर्व भी यहां हनुमानजी की आराधना होती थी। इस प्रकार शतश: हनुमान मंदिर राजस्थान में भक्तों के आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं।

अनुपम गुणों के धारक : आचार्य श्री

डॉ. सरोज कोचर
अध्यक्ष
राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥"

जब जब धर्म की ह्रास और अधर्म में वृद्धि होती है तब-तब धर्म के अभ्युत्थान हेतु महापुरुषों का जन्म होता है। धर्म के ह्रास की इसी श्रृंखला में जब गुजरात के परमार क्षत्रियों में हिंसा का बोलबाला था, जुआ, मदिरा, शिकार, आदि का उपयोग जनजीवन में व्याप्त था, आपसी कलह, द्वेष, बेमेल विवाह, बालविवाह, आदि कुरीतियाँ जीवन के पर्याय बन गयी थी तब अपनी महानता, दिव्यता और भव्यता से जन-जन के अंतर्मानस को अभिनव आलोक से आलोकित करने हेतु अहिंसा के मसीहा के रूप में सन् 1923 में गुजरात के सालपुरा ग्राम में पिता श्री रणछोड भाई एवं माता श्रीमती बालू बेन के घर आँगन को अपने जन्म से एक शिशु ने अलंकृत किया। यही शिशु रूप मोहन अपने संयम जीवन में आने वाली अनेक कठिनाइयों को पार करते हुए परमार क्षत्रिय वंश के आद्य जैन मुनि श्री इन्द्रविजय जी महाराज बना।

अपने संयम जीवन के आठवें वर्ष में शान्ति के अभिलाषी, कलिकाल कल्पतरु, युगवीर पंजाब केसरी आचार्य श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वर जी म.सा. के पावन सान्निध्य में नव जीवन के साथ नई दृष्टि, नई दिशा प्राप्त हुई। परम पूज्य आचार्य श्री जी की छत्र छाया में इन्होंने आगमों, संस्कृत, प्राकृत आदि से सम्बंधित अनेक ग्रंथों का ज्ञानार्जन किया। आचार्य श्री जी के देवलोकगमन के पश्चात् सेवाभावी, शांतमूर्ति नूतन पट्टधर आचार्य श्रीमद् विजयसमुद्र सूरीश्वर जी म.सा. के पावन सान्निध्य में रहे। मुनि श्री इंद्रविजय के पास एक मुमुक्षु ने संयम जीवन अंगीकार किया जो इनके प्रथम शिष्य मुनि श्री ओंकारविजय जी बने। सूरत में मुनि श्री इंद्र विजय जी को गणि पद से अलंकृत किया गया। अब स्वतंत्र

रूप से कार्य करने में सक्षम होने के कारण शान्तमूर्ति आचार्य श्री जी आज्ञा प्राप्त कर अपनी जन्मभूमि के परमार क्षत्रिय वंश में अहिंसा के प्रचार, सप्त व्यसन के त्याग एवं जीवन जीने की कला का कार्य बडौदा जिले के बोडेली से प्रारम्भ किया।

गणि श्री इन्द्रविजय जी ने कार्य क्षेत्र में अनेक बाधाएँ आने पर भी पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा। जब बडौदा पंचमहाल जिले में हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा था, सप्त व्यसन जन जन के जीवन पद्धति के अंग बन गये थे ऐसी स्थिति में गणि श्री जी ने समाज सुधार हेतु तन-मन से निर्भीक योद्धा की भाँति प्रस्थान किया। उस क्षेत्र में भक्तों ने इनको विचरण हेतु रोकते हुए कहा- हे गणि जी ! समस्याओं से ग्रसित इस क्षेत्र में सामान्य एवं वीर जन संसाधनों से युक्त होने पर भी जाने से कतराते हैं। आपके पास सुरक्षा के साधन नहीं हैं, अत: आप इस क्षेत्र में विचरण क्यों करना चाहते हैं ? इसके लिए भक्तों के साथ हुए प्रश्नोत्तर का संक्षेप में प्रत्युत्तर इस प्रकार हैं-

गणि जी ने कहा कि अहिंसा, शिक्षा एवं संस्कारों द्वारा व्यसनमुक्त जीवन जीने की कला सिखायी जायेगी। लोग व्यसन मुक्त जीवन जीयेंगे, तभी स्वस्थ समाज की रचना होगी।

यदि जनसमूह मारकाट, हत्या, शिकार आदि का त्याग करके अहिंसा के साथ व्यसन मुक्त जीवन जीते हैं, सादगी, संयम, सेवायुक्त जीवन जीते हैं, तो मेरी दृष्टि से वह अहिंसा का प्रत्यक्ष फल है। भक्तों ने कहा कि यह नैराश्यपूर्ण स्थिति है, अत: आप विचार छोड दीजिए।

गणि जी ने प्रत्युत्तर दिया कि निराशा में ही आशा के फूल खिलते हैं, इसके लिए आवश्यकता है असीम धैर्य के साथ निरंतर कार्य करने की। सच्चा सुख यदि कहीं है तो अहिंसा में है। सबसे प्रेम करने में है। फिर निर्णीत पथ पर आने वाली बाधाओं से क्या घबराना। यदि विधाता को इस क्षेत्र में कार्य करते हुए आमन्त्रण भेजना होगा तो मेरा महाप्रयाण भी सुखद होगा।

इस प्रकार आपने क्षत्रियोचित शारीरिक शक्ति, श्रमणोचित आत्मबल एवं व्यक्तित्व के ऊष्मा तत्व के द्वारा समाज में व्याप्त हिंसा, अंधविश्वासों एवं प्रगतिरोधक रूढियों को भस्मीभूत किया। प्रकाशतत्त्व से नवीन जीवन मूल्यों की पारदर्शी दृष्टि प्रदान की। जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी की भावना के मूर्तरूप बन आपने अपनी निष्काम सेवा, अदम्य पुरुषार्थ, ज्ञान गम्भीर्य, सूझबूझ, अद्भुत कार्यशैली से लगभग 12 वर्ष तक गुजरात में समाजोद्धार करते हुए नवीन इतिहास का एवं व्यसन मुक्त जीवन का धनी बनाते हुए भगवान महावीर के पथ का पथिक बनाया।

शताधिकै: संयमिभिर्जनैव मुमुक्षुभिधर्मपथैर्विनीत:।
सुमंदिराणीह कृतानि तावत् तत्प्रेरणासीच्च बलीयसी वै॥
विजयवल्लभचरितम् सर्ग 15- श्लोक 56।

आपके उपदेशों से असार संसार के स्वरूप को समझ कर मुमुक्षुओं ने संयम का जीवन अंगीकार किया। अनेकों गावों में जिन मन्दिर एवं पाठशालाएँ खोली गयीं। जैन धर्म के महान प्रचार कार्य एवं अद्भुत शासन प्रभावना के कारण गणि श्री इन्द्र विजय जी को शान्त मूर्ति आचार्य श्री विजय समुद्र सूरीश्वर जी महाराज ने सन् १९७० में उन्हें वसंत पंचमी के दिन बम्बई में 'आचार्य पद'से विभूषित किया। कुछ वर्षों पश्चात् उन्हें अपना पट्ट घर घोषित किया। सन् १९७७ में राष्ट्र संत आचार्य श्री विजयसमुद्रसूरीश्वर जी म.सा. श्री संघ के संचालन की सम्पूर्ण जिम्मेदारी आप पर आ गयी।

सूरीश्वर श्री विजय: समुद्र:
प्राघोषयत् पट्टधरं मुनीन्द्रम् ।
श्री इन्द्र दिन्नमथ स्वीचकार'
तस्मिन् गते सो ऽधि च कार्यभारम् ।

विजयवल्लभ सूरि चरितम् दो बार बाईपास सर्जरी आपरेशन तथा समय-2 पर तीव्र शारीरिक वेदना होने पर भी तन में व्याधि मन में समाधित रखते हुए वे अविराम गति से चलते रहे। वे विश्राम नहीं करते थे कहते थे कि जब तक मेरे शरीर में संकेत है श्वास है तब तक हर पल मैं शरीर से काम लेना चाहता हूँ। यदि मैं सेवा करता हुआ देह त्यागूँगा तो मुझे प्रसन्नता होगी। मैं अपने जीवन को सार्थक मानूँगा।

समाजसेवा-भिरतो व्रजेयम्, ।
लोकादमुष्मादति इरित वाँच्छा
अविश्रमं चैव करोमि कर्म
लोकोपकारे मम सार्थकत्वम्॥
विजयवल्लभचरितम् सर्ग 15, श्लोक-57

आपके गुरु वल्लभ ने जो स्वप्न देखे, उनके जो कार्य अधूरे रह गये उनको इन्होंने ऊंचाइयों तक पहुँचाया।

समाज के उत्कर्ष एवं संगठन के प्रबल प्रयास किये। अगणित कष्ट सहन किए पर अपने कर्तृत्व का कभी अपमान नहीं किया। सधर्मिक फाण्ड की स्थान स्थान पर स्थापना करवाते हुए सहधर्मी भाइयों के दुःखों को दूर किया।

जब पंजाब आतंकवाद से पीड़ित था, दिनदहाड़े हत्या की जा रही थी, आवास की समस्या भीषण हो रही थी गुरुदेव के प्रवचन से प्रभावित होकर पंजाब के भामाशाह, दानवीर उद्योगपति श्री अभयकुमार जी ओसवाल ने लुधियाना में 8 एकड भूमि में 750 फ्लेट बनाकर इंद्रदिन्न नगर बसाया। साथ ही धार्मिक सामग्री, मंदिर, उपाद्रय, पुस्तकालय, स्कूल, समुदाय केंद्र आदि की सुविधाएँ उपलब्ध करवायी।

ऐसे मानवता के मसीहा, व्यसनमुक्ति अभियान के सूत्रधार आत्म-वल्लभ समुद्र पुष्पवाटिका के भारती तपस्वी सम्राट उन्होंने अनेकानेक भव्य प्रतिष्ठाएँ, अंजनशलाकाएँ, उपधान, छरिपालित संघ निकालने आदि अनेकानेक कार्य सम्पन्न किये।

करनवृद्धि पार्श्वनाथ तीर्थ मेडता रोड पर संक्रान्ति के दिन शुभ एकादशी सं. 2057, 14 मई 2000 , रविवार को उन्होंने अपना पट्टधर कोंकण देश दीपक आचार्य श्रीमद् विजयरत्नाकर सूरीश्वर जी महाराज को घोषित किया। विजयवल्लभचरितम् के 15 वें सर्ग के 98 वें श्लोक में वर्णित-

विजय-इंद्रदिन्नस्तु स्वीयं पट्टधरं मुदा।
रत्नाकरं चकारासौ कोंकणदेशदीपकम्॥

निष्कर्ष: आचार्य श्रीमद् विजयइंद्रदिन्न सूरीश्वर जी ने मानव चिंतन के लिए नये क्षितिज खोले, मानव मन में नयी सम्भावनाएँ अंकुरित की। जीवन जीने के नये आयाम उद्घाटित किये। जन-जन को सही दिशा बोध देते हुए अनेक लोकोपकारी कार्य करते हुए अशुभ से शुभ, शुभ से शुद्ध का पथ प्रशस्त किया।

पूर्णावतार श्री कृष्ण तथा षोडश कला का रहस्य

प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
वरिष्ठ शोध अध्येता – भारतीय दार्शनिक अनुसन्धान परिषद्,
पूर्व अध्यक्ष – दर्शनशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। — गीता, ४.४–८

अर्थात् संसार में जब अधर्म बढ़ता है तथा धर्म क्षीण होने लगता है अथवा आसुरी शक्ति का राज तथा दैवी शक्तियों के परास्त होने पर ही भगवान् का भूमण्डल परअवतार होता है। सज्जनों की रक्षा एवं दुष्टों का संहार हेतु तथा धर्म संस्थापना के लिये बार–बार प्रत्येक युग में भगवान् श्री कृष्ण अवतरित होते हैं—ऐसी स्पष्ट घोषणा गीता में भगवान् ने स्वयं की है। भगवान् श्री कृष्ण अवतारी हैं तथा समय–समय पर वे अवतारों के रूप में अवतरित होते हैं। गीत गोविन्दकार जयदेव के मत में दश अवतारों को श्रीकृष्ण ने ही धारण किया, ऐसा मङ्गल पद्य में ही उन्होंने घोषित किया है—

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते,
दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते, हलं कलयते कारुण्यमातन्वते,
मलेच्छान् मूच्छर्यते दशाकृतिमते कृष्णाय तुभ्यं नमः।।

अर्थात् सृष्टि के बीज एवं वेदों के उद्धार हेतु 'मत्स्य' समुद्र मन्थन में मन्दराचल से अस्थिर जगत् को स्थिर करने हेतु 'कूर्म' तथा रसातलगामी भूमण्डल को धारण करने हेतु 'वराह' हिरण्यकशिपु जैसे दैत्यों को चीरने के लिए 'नृसिंह' राजा बलि को छलने के लिए 'वामन', दुष्ट क्षत्रिय राजाओं को नष्ट करने हेतु 'परशुराम' अहंकारी रावण को जीतने के लिए 'राम' द्वापर के दुष्टों को हल से नष्ट करने वाले 'बलराम' संसार के दुःखों का निवारण हेतु करुणामय 'बुद्ध' तथा मलेच्छों को मूर्च्छित करने हेतु 'कल्कि' की आकृति वाले दशरूपधारी श्री कृष्ण को प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार दशावतारों को श्री कृष्ण का अवतार माना गया है तथा श्रीकृष्ण को अवतारी, यहाँ यह सिद्ध होता है।

परमात्मा मूल स्वभावत: ज्ञानस्वरूप है परन्तु जगत् की रक्षा हेतु विविध रूपों में अवतार ग्रहण करता है। गीता कहती है कि अजन्मा, अव्यय और भूतों के ईश्वर होने पर भी माया के आश्रस से परमात्मा संसार में किसी जीव की प्रकृति को धारण कर अवतार रूप में उत्पन्न होता है।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य संभवाम्यात्ममायया।। —गीता, ३.६

अद्वितीय ब्रह्म में शक्ति पूर्ण है यह शक्ति जब दृश्य के आश्रय से उल्लसित होती है तो जगत् में इसका प्रकाश होता है। विकसित इस शक्ति को 'कला' कहा गया है। 'सोलह' शब्द-सम्पूर्णता का प्रकाशक है जहाँ पूर्ण सोलह कलायें प्रकाशित होती है उसे पूर्णिमा के चन्द्र के समान माना जाता है अर्थात् षोडश कलापूर्ण चन्द्र होता है। प्रत्येक दिन उसकी कला पहले क्षीण तथा फिर क्रमश: वृद्धि को प्राप्त करती है। प्रश्नोपनिषद् में 'एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमा: षोडशकल: सौम्य! पुरुष:' में परमात्मा में षोडश कला बताई गई है। षोडशी पुरुष में ये १६ कलायें परात्पर की १ कला, अव्यय उपादान कारण पुरुष की ५ कलायें—आनन्द, विज्ञान, मन:, प्राण तथा वाक् है। इसी प्रकार निमित्त कारण रूप अक्षर पुरुष की ५ कलायें हैं—ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि तथा सोम है। इसी प्रकार क्षर पुरुष (कार्यरूप) की ५ कलायें हैं—प्राण, आप्, वाक्, अन्न तथा अन्नाद। इस प्रकार आत्म तत्त्व १६ कलाओं से युक्त होता है (वेदों में भारतीय संस्कृति, पृ. १००-११५)। उस आत्मतत्त्व को ही गीता में परात्पर, अव्यय, अक्षर तथा क्षर रूप में विवेचित किया है। इसलिये सिद्ध होता है कि संसार के समस्त प्राणियों में षोडशकला वाला परमेश्वर ही प्रकाशित होता है। पूर्ण जगत्, समग्र जीव, ईश्वर आदि षोडश कला वाले परात्पर का अंश या कला है। भागवत में स्पष्ट किया गया है कि और सब तो अंशावतार है श्रीकृष्ण तो स्वयं षोडश कलापूर्ण भगवान् है—

'अन्ये चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (भागवत, १.३.२७)

परमात्मा की षोडश कलाएँ जड़चेतनात्मक संसार में व्याप्त है जितना जीव अपनी योनि में उन्नत होता है उतना ही परमात्मा की कला से वह विकास को प्राप्त कर लेता है। संसार के जीवों में अन्य योनियों से उत्कृष्टता या अपकृष्टता भगवत्कला के विकास के आधार पर ही निर्धारित होती है। चेतन सृष्टि में सबसे पहले उद्भिज्ज होता है, जिसके अन्नमय कोष के द्वारा यह एक कला विकसित होती है इसे छान्दोग्य उपनिषद् प्रमाणित करती है—'षोडशां कलानामेका कलातिशिष्टाभूत् सोऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वालीत्।' अर्थात् उद्भिज्ज योनि में अन्नमय कोष के कारण एक कला प्रकट होती है। इसके बाद स्वेदज जीव में दो कला, अण्डज पक्षी में तीन कला तथा जरायुज पशु योनि में चार कला तक का विकास होता है। तत्पश्चात् मनुष्य योनि में साधारण मनुष्य से लेकर विभूतियुक्त मनुष्य में पाँच कला से आठ कला तक का भगवत् शक्ति का विकास होता है। इस विकास को 'लौकिक विकास' कला गया है। पूर्ण कला के आधे तक लौकिक कोटि का विकास है। अब नौ कला से लेकर षोडश कला सम्पन्न केन्द्रों का दिव्य या अलौकिक मानते हुए 'अवतार' कोटि में परिगणित किया जाता है। इसलिये नौ कला से षोडश कला तक सम्पन्न जीव भगवान् का अवतार कहे गये हैं चाहे वे मनुष्य हो या कोई जीव इसलिये मत्स्य, कूर्म, वराह आदि

को अवतार कहा गया है क्योंकि वे असाधारण या अलौकिक शक्ति से सम्पन्न हैं। निष्कर्षत: कहा जा सकता है नौ कला से लेकर पन्द्रह कला तक अंशावतार एवं षोडश कला से पूर्ण केन्द्र ही पूर्णावतार है। सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोकों के निर्माण की इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत्तत्त्व आदि से निष्पन्न पुरुष का रूप ग्रहण किया जिसमें 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 कर्मेन्द्रियाँ, एक मन और पाँच महाभूत—ये सोलह कलायें थीं—

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभि:
सम्भूतं षोडशकलामादौ लोकसिसृक्षया।। — भागवत, १.३.१

वस्तुत: भगवान् में एक विशेष कला ही बीजरूप में है जिसे पूर्णामृता कहते हैं। यह कला षोडशी कला कहलाती है, यह सच्चिदानन्द रूपिणी है—

षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी। — शाक्ततन्त्र

यह बीज रूपा है इसमें सत्, चित् तथा आनन्द की समष्टि है। जब जगत् की सिसृक्षा होती है तो ये तीनों कारण कार्य रूप में परिणमित होते हैं—इन्हें त्रिगुणात्मिका प्रकृति राधा भी कहा गया है। फिर शब्द कला तथा जगत् की रूप कला प्रकट होती है अत: पाँच कलायें बन जाती हैं। सत् से ज्ञानेन्द्रियाँ, रज में कर्मेन्द्रियाँ तथा तम में पंच महाभूत प्रकट होते हैं। ईश्वर में केवल सात्त्विक अंश होता है फिर उसके अंश जीवों में त्रिगुणों की स्थिति होती है। भगवान् के पाँच कर्म हैं—सृष्टि, स्थिति, संसार, अनुग्रह, तथा निग्रह। इसके आधार पर परमात्मा, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव कहलाता है फिर मायारूपी छठी कला से जगत् में नानात्व भासित होता है। अत: उसमें षड्गुण या षट्कलायें प्रधानत: दिखने लग जाती हैं—

वैराग्यं ज्ञानमैश्वर्यं धर्मश्चेत्यात्मबुद्ध्य:।
बुद्ध्य: श्री यशश्चेति षड् वै भगवतो भगा:।।

भगवान् का अर्थ है भग वाला। इस श्लोक में षट् भग बताये गये हैं—१. वैराग्य, २. ज्ञान, ३. ऐश्वर्य, ४. धर्म, ५. यश और ६ श्री। अर्थात् जिस व्यक्तित्व में छह गुण या कलायें पूर्णतया समाविष्ट हो वह भगवान् कहा जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र में ये छह गुण या कलायें पूर्णत: परिलक्षित होती हैं।

१. वैराग्य का अर्थ निष्काम भाव या आसक्ति रहित होना। श्री कृष्ण का मथुरागमन निरासक्ति का परम प्रमाण है। महाभारत युद्ध में एक नीतिकार के रूप में कार्य करते हुए केवल सारथि के रूप में ही अपने को दिखाना भी वैराग्य वृत्ति का उदाहरण है। गीता में उन्होंने स्पष्ट किया है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न द्वेष्योऽस्ति न मे प्रिय:।

ये उनका प्रिय सिद्धान्त है कि सभी प्राणियों में समानता है, न कोई प्रिय है न कोई अप्रिय है। इस प्रकार की भावना रखना।

अत: श्री कृष्ण में वैराग्य की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है।

२. ज्ञान उनकी द्वितीय कला है। ईश्वर कृष्ण में समग्र ज्ञान या सम्पूर्ण ज्ञान गीता के माध्यम से सिद्ध होता है। गीता में उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अद्वितीय है जिनमें आज भी नये-नये अर्थ निकाले जाते हैं। अत: ज्ञान कला का भी समग्र विकास उनके द्वारा प्रकट किया गया है। महाभारत में तीन गीताएँ—कामगीता, भगवद्गीता तथा अनुगीता तथा भागवत में उद्धव गीता उनके पूर्ण ज्ञान का प्रबल प्रमाण है।

३. ऐश्वर्य तृतीय कला है। उनकी महत्ता एवं सत्ता जगद्विदित है। ऐश्वर्य आध्यात्मिक अणिमा आदि अष्ट सिद्धि तथा लौकिक अपूर्व सम्पत्ति को माना गया है। आध्यात्मिक शक्ति ही ऐश्वर्य है जिसके कारण जेल में जन्म लेकर आजीवन महासंकटों का सामना करते हुए, स्वप्रकट काल से ही अपना ऐश्वर्य प्रकट करते हैं। जेल की कालकोठरी से निकलकर बचपन में भयंकर राक्षसों का उद्धार, गोवर्धन धारण आदि अलौकिक चरित्रों में ऐश्वर्य कला की पूर्णता प्रमाणित होती है। युद्ध में रथ पर बैठकर भयंकर कोलाहल में गीता का प्रवचन उनकी आध्यात्मिक शक्ति का प्रचण्ड प्रमाण है। इसी तरह समुद्र में द्वारका की स्थापना लोकोत्तर सम्पत्ति उनके ऐश्वर्य कला के बल को सूचित करती है।

४. धर्म कला यह उनके जीवन का प्रधान प्रभाव है। उनका हर कार्य धर्म संरक्षण हेतु ही है। सम्मानित शक्तिशाली योद्धा होने के पश्चात् भी धर्म निष्ठा हेतु युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में बर्तन मांजने का कार्य करना तथा सभी अतिथियों का पाँव धोना। अत: उनके चरित्र से अमानित्व, अदम्भित्व जैसे चरित्र की प्रतिष्ठा होती है। उन्हें न प्रशंसा चाहिये न ही कोई मान और सम्मान। यह अद्भुत बात उनके धर्मकला का रहस्य प्रकट करती है। कंस और जरासंध को मारने के बाद भी उनका राज्य नहीं लेना, गुरुसेवा, सत्य और क्षमा आदि अनेक रूप उनकी धार्मिक धर्मनिष्ठा का प्रमाण है कि जब महाराज परिक्षित का मृतक बालक के रूप में जन्म होने पर उन्होंने उसे जिलाते हुए कहा था—'यदि मैंने धर्म विरुद्ध कोई कार्य न किया हो और सदा धर्माचरण किया हो तो यह बालक जीवित हो जाये।' बालक तुरन्त जीवित हो गया। अत: धर्म कला का पूर्ण विकास इनके श्रीकृष्ण रूप में सार्थक होता है।

५. यश कला में उनकी लीलाओं को याद किया जाता है। आज विश्व के सभी भागों में श्रीकृष्ण मन्दिर की स्थापना उनके जीवन्त यशोगाथा का विकास है। विश्व की असंख्य आत्माएँ उनके पावन यशोमय चरित्र से आज भी प्रेरणा लेती है।गीता एवं भागवत के द्वारा उनके सिद्धान्तित ज्ञान एवं चरित्र की महिमा विश्व को सदा आलोकित कर रही है।

६. उनकी छठी कला 'श्री' है। जो विद्या होने से अनेकता में एकता दिखाती है तथा माया के द्वारा एकता को न दिखाकर भेदमय जगत् को वास्तविक बनाती है। समस्त संसार इसी से उन्मत्त हो जाता है तथा मुक्त भी हो सकता है। समस्त ब्रह्माण्ड का बीज और आश्रय होने से सर्वोच्च कला है। समस्त जगत् उनके अन्दर सृष्ट, स्थित और संहरित होता है। यह उनका विराट् पुरुष का दिव्य रूप है। इस प्रकार उनके जीवन की प्रधान छह कलाओं को समझना चाहिये। श्रीकृष्ण का चरित्र पाँच हजार वर्षों से भी पुराना है पर उसमें आज भी सरसता एवं नवीनता का अनुभव होता है। यह उनके अनन्त एवं

असीमित ज्ञान, धर्म, वैराग्य, यश, ऐश्वर्य तथा श्री उनका पूर्णावतार षोडश कलायुक्त भगवान् होना सिद्ध करती है। अन्य अंशावतार किसी एक प्रधान उद्देश्य तक सीमित है। श्रीकृष्ण का चरित्र सम्पूर्णता एवं समग्रता को परिभाषितकरता है।

अवतारों के भेद

भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त जो अंशावतार है वे प्राय: रक्षावतार, मर्यादावतार के रूप में अवतरित होने के कारण परा प्रकृति के अधिष्ठान में अवतरित हुए जबकि भगवान् श्रीकृष्ण 'परा' एवं 'अपरा' प्रकृति (माया) के अधिष्ठान से अवतरित हुए हैं। अवतार किसी एक जीव के कल्याण हेतु नहीं होता है परन्तु समष्टि जीवों के कल्याण के लिए होता है। नौ कला से पन्द्रह कला तक अंशावतार तथा १६ कला के अवतार पूर्णावतार कहलाते हैं। निमित्त के कारण विशेष तथा अविशेष अवतार भी होते हैं। भगवान् का नित्य अवतार भी है। नित्य का अर्थ सभी प्राणियों में भगवान् का नित्य होना। गीता में ईश्वर की यह परिभाषा अनेकत्र दी गई है—भगवान् गीता में कहते हैं कि ईश्वर के रूप में सभी प्राणियों के हृदय में रहता हूँ तथा सभी प्राणियों को यह पता भी नहीं लगता है कि मैं उनके अन्तर्यामी रूप में रहता हूँ—

ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। — गीता, १८.६१
सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो। — गीता, १५.१५

अर्थात् समस्त प्राणियों के हृदय में संस्थित हूँ। जो हमें अधर्म से रोकता है तथा धर्म को पालन करने की मति देता है। अत: प्रत्येक जीव में भगवान् का नित्यावतार है। इसलिये कबीरदास जी कहते हैं—

कस्तुरी कुण्डली बसे, मृग ढुंढे वन माहि।
ऐसे घट घट राम है, दुनिया देखें नाहिं।।

विशेषावतार को आवेशावतार कहते हैं। पद्मपुराण में कहा गया है—

अविष्टोऽभूत् कुमारेषु नारदे च हरिर्विभु:।
आविवेश पृथुं देव: शङ्खी चक्री चतुर्भुज:।।

भगवान् सनत्कुमारों में तथा नारदजी में आविष्ट हुए तथा राजा पृथु में आविष्ट हुए। अत: सनत्कुमार, नारद तथा पृथु को आवेशावतार कहा गया है। चैतन्य महाप्रभु को भी आवेशावतार माना गया है। अविशेषावतार दीक्षा प्रदान करते समय गुरु में होता है। वस्तुत: गुरु भगवान् ही होता है परन्तु शिष्य से सम्पर्क करने हेतु गुरु के द्वारा शिष्य की चेतना को प्रबोधित करता है जैसे रामकृष्ण परमहंस के माध्यम से विवेकानन्द में भगवती काली का भाव अवतरित होता है। इस तरह पाँच तरह के अवतार शास्त्रों में माने गये हैं।

शैव तथा शाक्तों के अनुसार भगवान् शिव में स्वतन्त्रता, नित्यता, नित्यतृप्तता, सर्वकर्तृकता एवं सर्वज्ञता आदि पञ्च शक्ति कला रहती है जिनका नाम है—शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्ध विद्या और माया। छठी कला इनका आधार या शिव का आश्रय है। इसी प्रकार जीव में ये कलायें संकुचित या सीमित रूप में रहती है। इनका नाम है—नियति, कला, राग, काल तथा अविद्या हैं अर्थात् शिव सत्य है, नित्य है, आनन्दमय है, सर्व कार्य करता है तथा सर्वज्ञ है। जीव परतन्त्र है, कालाधीन है, कुछ आनन्द को प्राप्त करता है तथा कुछ कार्य कर सकता है तथा कुछ जानता है। इसलिये एक को आत्मा दूसरे को परमात्मा कहा गया है। इसी प्रकार विष्णु पुराण के अन्त में भगवान् शब्द के अर्थ के विचार में कहा गया 'भ' का अर्थ भर्ता और सम्भर्ता है, गकार का अर्थ नेता, गमयिता स्रष्टा है। भग की षट् कलाओं का नाम है—समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्रश्री, समग्र ज्ञान तथा समग्र वैराग्य—

सम्भर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः।
नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुनिः।
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।। — विष्णुपुराण, ६.५.७३–७४

भगवान् में 'व' का अर्थ है सभी प्राणी जिसमें बसते हैं, भगवान् उनका आधार है। प्राणियों की आत्मा में भगवान् भी बसते हैं। अतः उन्हें वासुदेव कहा जाता है। षाड्गुण्य ही भग है अर्थात् ६ कलाओं या गुणों का समूह। भगवान् का वाच्य अर्थ है कि जो उत्पत्ति (जन्म) प्रलय (नाश) का कर्त्ता, प्राणियों का आने एवं जाने का आधार है तथा विद्या तथा अविद्या को जानता है वह भगवान् है—

वसन्ति यत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि।
सर्वभूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोन्वयः।। — विष्णुपुराण, ६.५.७५
उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवान् इति।। — विष्णुपुराण, ६.५.७८

वस्तुतः भगवान् में कोई दोष नहीं होता है। कोई त्याज्य अंश नहीं होता है तथा सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज गुण रूपी छह कला वाला होता है। भगवान् के आश्रय में सभी सांसारिक प्राणी रहते हैं तथा स्वयं भगवान् परमात्मा उन प्राणियों में भी रहता है अतः वासुदेव कृष्ण माना जाता है—

ज्ञान–शक्ति–बलैश्वर्य–वीर्यतेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि, विना हेयैर्गुणादिभिः।।
सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि।

भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्तत: स्मृत:।। — विष्णुपुराण, ६.५.७९–८०

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि भगवान् तो समग्र कला तथा गुणों का सागर है अत: इसकी कलायें अनिर्वचनीय एवं असंख्य हैं।

तन्त्रागम के अनुसार बीजरूप में पाँच कलायें हैं—

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं मायारूपं ततो द्वयम्।।

वस्तुत: ब्रह्म में अस्ति = होना सत् का लक्षण है। भाति = प्रकाशित होना अर्थात् चिद् या ज्ञान को कहा जाता है तथा प्रिय = आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द पर ब्रह्म की तीन कलायें हैं। नाम = शब्द तथा रूप = भौतिक पदार्थ जगत्। ये दो शक्ति की बीजकलायें हैं। इन्हें वेदों में शब्द ब्रह्म कहा गया है। इस प्रकार ये पाँच प्रधान बीजकला है।

श्रीकृष्ण में पहली सत् कला के अनुसार कर्म की पूर्ण लीला, दूसरी चिद् कला के अनुसार ज्ञान की पूर्ण लीला तथा तीसरी आनन्द कला के अनुसार उपासना तथा चतुर्दश रसों की लीला प्रकट होती है। अत: श्री कृष्ण में ज्ञान समुद्र की तरंगे, अनन्त सत् कर्मों की निधि तथा उपासना के सभी रसों की लीला सुलभ होती है। इसलिये ऐश्वर्य के साथ मधुरता प्राप्त होती है। बाँसुरी उनकी मधुरता को सिद्ध करती है।

इन्द्रविजय पुस्तक में पं. मधुसूदन ओझा ने दिव्य कला चौसठ तक बताई है (पृ. २०४)। श्री कृष्ण योगेश्वर है उनके लिये योग द्वारा उत्पन्न कलाओं का नामकरण इस प्रकार हैं—

१. मन के ज्ञानेन्द्रिय संयम से १६ कलायें—अष्ट सिद्धि—१.अणिमा, २. महिमा, ३. गरिमा, ४. लघिमा, ५. प्राप्ति, ६. प्रकाम्य, ७. ईशित्व, ८. वशित्व, ९. भूतभविष्य ज्ञान, १०. दूरपरोक्षज्ञान, ११. सभी प्राणियों की आवाज का ज्ञान, १२. मनोविज्ञान, १३. भूगर्भविज्ञान, १४. भुवनज्ञान, १५. ओषधि ज्ञान, १६. तारा ज्योति ज्ञान।

२. कर्मेन्द्रिय संयम (तपोबल) तथा प्राणसंयम (देवबल) से प्राप्त १६ कलायें—१. देव–साक्षात्कार, २. कृत्यासिद्धि, ३. शरीर से निकली हुई आत्मा को देखना, ४. मृतपुरुष से साक्षात्कार, ५. विराड्रूप दर्शन, ६. माया व्यामोह, ७. उपश्रुतविद्या, ८. संस्कारोपधानी विद्या, ९. काय व्यूह, १०. परकाय प्रवेश, ११. प्राणहारिणी विद्या, १२. मृतसंजीवनी, १३. स्थाणु संजीवनी, १४. छाया निग्रहणी, १५. आकृति परिवर्तनी, १६. लिङ्गपरिवर्तिनी।

३. कर्मेन्द्रिय बल के द्वारा निगम तथा आगम के माध्यम से प्राप्त १६ कलायें—१. सर्पाकर्षिणी, २. अग्निजलस्तभिनी, ३. अक्षयकरणी, ४. निग्रहकरणी, ५. पुत्रसंजननी, ६. जलवर्षिणी, ७. अपोनप्त्रीय, ८. मधुविद्या, ९. मारणी, १०. मोहनी, ११. उच्चाटनी, १२. वशीकरणी, १३. विद्वेषणी, १४. स्तम्भनी, १५. आकर्षणी तथा १६. संरक्षणी।

४. कर्मजन्य भौतिक कलायें—१. मृतसंजीवनीगुटिका, २. संजीवनकरणी, ३. विशल्यकरणी, ४. सावर्ण्यकरणी, ५. सन्धानकरणी, ६. अरिष्ट भैषज्या, ७. डिम्भप्रसविनी, ८. बला अतिबला, ९. दिव्यविमान, १०. पुष्पक विमान, ११. सोमविमान, १२. नौकाविमान, १३. हर्यश्व विमान, १४. प्लवविमान, १५. अमृतगवी, १६. शिलासन्तरणी।

अर्थात् मन, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय तथा कर्मजन्य कलायें प्रत्येक १६ तरह की है, कुल ६४ है। चन्द्रमा में प्रत्येक तिथि की कला भिन्न होती है उसकी सोलह कलाओं के नाम हैं—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिमा, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा तथा पूर्णामृता।

करपात्री जी ने अपने ग्रन्थ श्रीविद्यारत्नाकर में महात्रिपुरसुन्दरी को ब्रह्मस्वरूपिणी षोडशी विद्या सिद्धान्तित किया है। तिथि रूपी पन्द्रह कलायें उसकी नित्य कलायें हैं। श्रीयन्त्र के नव आवरणों में शताधिक कलाओं की अर्चना विधि प्रस्तुत की है। जिज्ञासु वहीं देखें। उपासना के ग्रन्थों में परमात्मा की कलाओं का विस्तृत अर्चन उपलब्ध है। विस्तार भय से लिख नहीं रहे हैं।

किसी के मत में १६ कलाओं के नाम इस प्रकार हैं—श्री, भू, कीर्ति, वाणी, लीला, कान्ति, विद्या, विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञान, क्रिया, योग, विनय, सत्य, ईशिता, अनुग्रह।

प्रत्येक देव के साथ उनकी कला या तिथि रूपी कलायें नित्य विराजमान रहती है। जिस तरह सूर्य के साथ उसकी किरणें रहती हैं। अत: कलायें अनन्त मानी जाती हैं जिनका वर्णन किसी मनुष्य के द्वारा सम्भव नहीं है। कबीरदास जी ने कहा है कि—

सारी धरती कागज करु, लेखनी करु वन राय।
सात सिन्धु की मषी करुं, हरिगुण लिखा न जाय।

अत: षोडश कला का वर्णन ही पर्याप्त है।

वेदों में आयुर्वेद

गोपीनाथ पारीक गोपेश
अध्यक्ष
राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्

विद्या दो प्रकार की है- परा तथा अपरा।

परमात्मा सम्बन्धी विद्या परा है और लौकिक तथा पारलौकिक भोगों की प्राप्ति, रचना आदि विषयों की जानकारी कराने वाली विद्या 'अपरा' के नाम से जानी जाती है। इस अपरा विद्या के अठारह भेद है-

अंगानि वेदाश्चत्वार: मीमांसा न्यायविस्तर:।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गंधर्वश्चेत्यनुक्रमात्।
अर्थशास्त्रं परं तस्माद् विद्याष्टादश स्मृता:॥

ज्योतिष को वेदांग कहा गया है, वेद चार हैं ही। वेद भारतीय ही नहीं, मानवीय सभ्यता के आदि ग्रंथ हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद है। धनुर्वेद को ऋग्वेद का, आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना गया है। कुछ विद्वान ऋग्वेद का उपवेद अर्थवेद, यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद और सामवेद का उपवेद गंधर्ववेद को मानते हैं। 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' इस परिभाषा से वस्तु का तात्त्विक वकक स्वरूप जाना जाने के कारण इन वेद-उपवेद को वैदिक दर्शन भी कहते हैं। आध्यात्मिक विषयों के प्रसिद्ध विचारक श्री वासुदेव शरण अग्रवाल अपने वैदिक दर्शन नामक आलेख में लिखते है कि- 'अन्य दर्शन बुद्धि के लिये और वैदिक दर्शन हृदय के लिये हैं। बुद्धि बिना जल के भीतर बैठे प्रवाह की मीमांसा कर सकती है, मधु का स्वाद चखे बिना वह मधु की ऊहापोह करने की अभ्यस्त है, परंतु हृदय तरंगित जल में तैरना और मधु का स्वाद चखना चाहता है। अन्य दर्शनों की पद्धति मनुष्य के एक चैतन्य के एक अंश का स्पर्श करती है, वैदिक दर्शन उसके समग्र रूप के साथ तन्मय होने का निमंत्रण देता है। भविष्य निश्चय रूप से वैदिक दर्शन के हाथ है, क्योंकि उसका संदेश कविता के द्वारा कहा गया है। बुद्धि से थके हुये मानव की भावी भाषा कविता ही होगी। वेद से भारतीय दर्शन तथा संस्कृति के सर्व प्राचीन स्त्रोत और विश्वास के पवित्र ग्रंथ हैं। वेद शब्द विद् धातु से बना है जो सत्ता, विचारण, ज्ञान और

लाभ चार अर्थों को व्यक्त करता है अर्थात जिसकी सदैव सत्ता हो, जो ऐहिकामुष्मिक विचारों का कोश हो, जो अपूर्व ज्ञानप्रद हो और जो लौकिक लोकोत्तर लाभ प्रदान करता हो। सत्ता, गुण, विचार और लाभ ये चारों गुण आयुर्वेद में भी विद्यमान होने से आचार्यों ने इसे भी वेद कहा है- 'तस्यायुष: पुण्यतमो वेद:' (सुश्रुत)।

जब मनु महाराज 'वेदो अखिलो धर्ममूलम्;' कहते हैं तो आवश्यक हो जाता है कि यह धर्म क्या है ? धर्म की विविध शास्त्रों में विविध परिभाषायें दी है किंतु यदि संक्षेप में धर्म को जानना चाहें तो-

य एव श्रेयस्कर: स धर्मशब्देनोच्यते।

अर्थात् जो कुछ श्रेयस्कर (मंगलकारक) है, उसका नाम धर्म है। सभी प्रकार से श्रेयस्कर होने से आयुर्वेद भी एक धर्मप्राण जीवन विज्ञान सिद्ध होता है। धर्मपरायण ऋषियों ने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर ही आयुर्वेद का प्रवर्तन संवर्धन किया-

धर्मार्थ चार्थकामार्थं आयुर्वेदो महर्षिभि:।
प्रकाशितो धर्मपरै: इच्छद्भि: स्थानमक्षरम्॥ - चरक०चि० १-४-५७

वैद्य के लिये धार्मिक होना उतना ही आवश्यक है, जितना आयुर्वेद का विज्ञाता होना-

आयुर्वेदस्य विज्ञाता चिकित्सासु यथार्थवित्।
धार्मिकश्च दयालुश्च तेन वैद्य: प्रकीर्तित:॥ - ब्रह्मवैवर्त पुराण 16-26

भट्टार हरिश्चंद्र ने असात्मेंद्रियार्थ संयोग-प्रज्ञापराध-परिणाम इन व्याधि हेतु त्रय में परिणाम के अंतर्गत अधर्म को भी रोगों का प्रमुख कारण स्वीकार किया है। चक्रपाणिदत्त ने अधर्म को प्रज्ञापराध के अंतर्गत माना है।

'धर्मेण हन्यते व्याधि:' को ध्यान में रखते हुये आचार्य वाग्भट्ट लिखते हैं-

सुखार्थी: सर्वभूतानां मता: सर्वा: प्रवृत्तय:।
सुखं च न विना धर्मात् तस्माद् धर्मपरो भवेत्॥ - अ०हृ० सू०२-२४

आयुर्वेद का धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बंध को विश्लेषित करते हुये धर्म धुरन्धर विद्वान् व्याख्याकार हेमाद्रि इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार करते हैं-

यद्यपि षोडशात्मकाच्चिकित्सानादारोग्यं तथापि धर्मसहकृता देवेति धर्मस्यायुर्वेदाङ्गत्वम्। - हेमाद्रि

'धर्मात् सिध्यति सर्वम्' (चक्रपाणि) को हृदयंगम करते हुये धर्मपरायण आयुर्वेद में निष्णात एक धार्मिक आयुर्वेद चिकित्सक अपने भगवान से यही प्रार्थना करता है-

भगवान मेरा जीवन सद्धर्म के लिए हो।
हो जिंदगी तो लेकिन उपकार के लिये हो॥

वेदों से ही सारी धर्मव्यवस्थायें हैं। मंत्र और ब्राह्मण भेद से इन वेदों के दो प्रकार हैं। इनका जो मंत्र समुदाय है, वह संहिता के नाम से भी जाना जाता है। ब्राह्मण भाग इस संहिता भाग की व्याख्या करता है। यह ब्राह्मण भाग भी तीन भागों में विभक्त है- ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। यज्ञस्वरूप प्रतिपादक भाग को ब्राह्मण विषयक मोक्षसाधनों की विवेचना प्रस्तुत करने वाले भाग को उपनिषद् नाम से जाना जाता है।

वेद अनादि, नित्य और अपौरुषेय तथा इनकी प्रामाणिकता स्वत: सिद्ध है। जो शास्त्र या व्यक्ति इनको प्रमाण मानता है, वह आस्तिक तथा नहीं मानने वाला नास्तिक कहलाता है। आयुर्वेद भी इन्हें प्रमाण मानने के कारण आस्तिकता से परिपूर्ण है। वेदों के अध्ययन अध्यापन एवं अनुशीलन की भाँति ही इस आयुर्वेद को धारण करने का महर्षि कश्यप परामर्श देते हैं

धारणं ह्यस्य तंत्रस्य वेदानां धारणं यथा।
पुण्यं मंगल्यमायुष्यं दु:स्वप्नकलिनाशनम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणीं धर्ममायतनं महत् ।
सुखप्रदं नृणां शश्वद्धनमान यशस्करम् ॥ - का०सं० सू० 27

तब ही तो वेदों को नारायण का स्वरूप माना गया और इनमें उपदिष्ट कार्यों को ही धर्म माना गया है-

वेदप्रणिहतो धर्मो धर्मस्तद्विपर्यय: ।
वेदो नारायण: साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम: ॥ - श्रीमद्भागवत 6-1-40

वेदों पर सायणाचार्य ने भाष्य लिखे और भी अनेकानेक मनीषियों ने इन पर विस्तृत विवेचनायें प्रस्तुत कीं, उनका उल्लेख करना सही विषयान्तर होगा, किन्तु आचार्य श्री चतुरसेन का यह कथन लिख देना उपयुक्त होगा जर्मन के

मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य पर बहुत परिश्रम किया। वह योरोप भर में वेद का सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता के रूप में प्रसिद्ध हो गया। उसने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे । स्वामी दयानन्द ने उसके जो वैदिक व्याख्यान थे, उनका कठोरता से खण्डन किया। मैक्समूलर ने ते दों पर परिश्रम तो बहुत किया, परन्तु वेदों के सम्बन्ध में उसकी धारणा बहुत हीन रही। सन् 1866 में उसने अपनी पत्नी को जो पत्र लिखा था, उसमें उसने लिखा था यह वेदों का संस्करण तथा मेरा वेदभाष्य उत्तरकाल में भारत के भाग्य पर भी भारी प्रभाव डालेगा। यह उनके धर्म का मूल ग्रन्थ है और मैं निश्चयपूर्वक यह कह सकता हूँ कि उन्हें उसका दिग्दर्शन कराती मृत तीन हजार वर्षों की दीर्घकालीन आस्तिक भावना को निर्मूल कर देगा'|

यद्यपि वेद के नाम से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व वेद का शुरु किया जाता है, परन्तु वैदिक साहित्य के अन्तर्गत उपवेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् तथा छह वेदांग आदि सभी का ग्रहण किया जाता है। अत: आयुर्वेद की भी गणना वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ही की जाती है। वैदिक मन्त्रों के दो प्रकार के मुख्य पाठ उपलब्ध होते हैं. संहिता पाठ और पद पाठ। संहिता पाठ को अधिक प्रामाणिक एवं पवित्र समझा जाता है। भारतीय परम्पराओं के अनुसार ऋषियों को वेदों का ज्ञान संहिता के रूप में हुआ था। वेदों का अध्ययन अध्यापन भी संहिताओं के रूप में किया जाता है। आयुर्वेद के चरक संहिता, सुश्रुत संहिता एवं काश्यप संहिता आदि संहिता ग्रन्थ प्रसिद्ध है। कविराज रत्नाकर शास्त्री ने स्पष्ट किया है, कि प्राचीन काल में मौलिक ग्रन्थ को तन्त्र या अन्य स्वतन्त्र नाम देकर प्रसिद्ध किया जाता था । परन्तु जो ग्रन्थ सर्वथा मौलिक न होकर अन्यों के लेख अथवा विचारोंसे संकलित होते थे वे 'संहिता' कहे जाते थे। वेदों की संहिताओं से लेकर उसके उपरान्त के भी संग्रह ग्रन्थ संहिता के नाम से प्रसिद्ध हुये। संहिता शब्द का अर्थ ही बिखरी हुई सामग्री को संग्रहित करना है' (भारत के प्राणाचार्य)"।

ऋग्वेद- ऋग्वेद विश्व के प्राचीनतम साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन महान और सर्वमान्य ग्रन्थ है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का सम्पूर्ण ज्ञान इसमें निहित है। इसमें कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड एवं उपासना काण्ड के साथ अनेक ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं चिकित्सा सम्बन्धी विषयों का निर्देश है। चिकित्सा से सम्बन्धित अनेक मन्त्र ऋग्वेद में हैं। ओषधियों, मन्त्रों द्वारा चिकित्सा की जाती थी। आयुर्वेद के अनुसार ओषधियों से चिकित्सा करना युक्तिव्यपाश्रय है तो मन्त्रों द्वारा चिकित्सा करना देवव्यपाश्रय है। योग्य वैद्य चिकित्सा करने हेतु अनेक ओषधियों का संग्रह करते थे। एक मंत्र (१-२४-९) में प्रार्थना की गई है कि 'हे राजन् तुम्हारे पास सैंकड़ों वैद्य हो'।

ऋग्वेद में शल्य विज्ञान के विकास के भी संकेत मिलते हैं। अश्विनी कुमार मुख्य शल्य चिकित्सक थे, जिन्होंने विश्पला की टूटी जांघ को जोड दिया था, ऋजाश्व की आंखें बनाई थी और श्रोण के घुटने ठीक किये थे। इन्होंने प्रजापति से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर इंद्र को दिया था। उसी ज्ञान को इंद्र से भारद्वाज ने ग्रहण किया था, जिसका उल्लेख चरक के

सूर्यस्थान के प्रथम अध्याय में मिलता है। इन्होंने च्यवन ऋषि को वह अवलेह सेवन करा कर पुनर्योवन प्रदान किया था, जो आज च्यवनप्राश के नाम से विश्वविख्यात है। इसके अतिरिक्त बहुत से योग हैं, जिन्हें प्रयोग में लाकर वैद्य रुग्णजनता को लाभान्वित करते हैं। राजयक्ष्मा में प्रयुक्त बृहद्वासावलेह, यकृत्प्लीहा रोगों में प्रयुक्त गुडपिप्पली, वातरक्त में प्रयुक्त अमृता घृत तथा श्री गोपाल तैल, गुड कूष्माण्ड, बृहदश्वगंधा कृत आदि तथा श्री गोपाल तैल, गुड इन्हीं अश्विनी देवताओं की ही देन है।

ऋग्वेद में आयुर्वेदीय चिकित्सा के मूल आधार वात, पित्त, कफ (त्रिदोष) का स्पष्टतया वर्णन मिलता है-

ओ३म् त्रिर्नो आश्विना दिव्यानि भेषजाभि: पार्थिवानि त्रिभिर्दत्तमरुद्भ्य: ओमानं शं योर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्मवद्वतं शुभस्यती।– ऋग्वेद१-३४-६

ओउम् या व: कार्मशमनाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुभेयकक्षमाथि। अस्मभ्यं तानि मरुतो कियन्तोपिं नो धत्त वृषण: सुवीर्यम्॥ - ऋग्वेद १-८५-१२

त्रिधातूनि त्रयो वात पित्तकफा: येषु शरीरेषु तानि शरीराणि। -दयानंद सरस्वती

त्रिदोष के इस प्रसंग में यह लिख देना उपयुक्त समझता हूँ जो आचार्य श्री प्रियव्रत शर्मा ने 'त्रिदोष की प्रधानता' (सचित्र आयुर्वेद दिस. १९९६) नामक लेख में व्यक्त किया है। आप लिखते हैं कि- 'त्रिदोष स्थूल शरीर के घटक न होकर लिंग शरीर के अंग हैं, जो सूक्ष्म रूप से जीवात्मा के साथ साथ और मृत्यु के समय निकल जाते हैं। इस बीच के काय, जिसे 'आयु' कहते हैं, में ये जीवन की क्रियाओं का संचालन करते हैं। विसर्ग, आदान और विक्षेप कफ, पित्त, और वात के प्रमुख कर्म हैं।

त्रिदोष में भी वायु की प्रधानता है। यह वायु ही पित्त और कफ को गति प्रदान करता है, जिससे ये कार्यक्षम होते हैं.। वेद में कहा गया है कि प्राणव्यापार वायु से होता है। प्राण को समस्त प्राणियों के अन्दर जीवनी शक्ति के रूप में व्यक्त किया है।

ऋग्वेद के ऐतरेय और कौषातकी ये दो आरण्यक हैं। ऐतरेयारण्यक (२-३-३) में कहा गया है, कि यह वायु पाँच प्रकार का है जिनके नाम प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान है। श्वासनि: श्वास की प्रक्रिया का वर्णन बड़े ही सुन्दर रूप से प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वायु से प्रार्थना की गई है कि हे वायु, तू रक्त में जो मल है उसे बाहर निकाल क्योंकि तू सब रोगों का भेषज है, तू देवों का दूत होकर विचरता है -

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आ वातु पगन्ते वातु यद् रपः ॥
आ वात वाहि भेषजं निवात नहि यद् रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥ - ऋग्वेद 10-136-2

दीर्घजीवन के लिये अमृतमय औषध भण्डार से अंश प्राप्ति की प्रार्थना वायु से की गई है, क्योंकि वायु ही विश्वभेषज या देवदूत के नामों से जाना गया है। ऋतु संधियों में व्यापक रूप से फैलने वाली महामारियों को रोकने के "भैषज्य यज्ञ" किये जाते थे जिससे वातावरण सुरभिमय रोग दूर होते थे। आचार्य चरक इसी ओर इंगित करते हुये कहते हैं-

यथा प्रयुक्तया चेष्ट्या राजयक्ष्मा पुरा जितः ।
तां वेदविहितामिष्टिम् आरोग्यार्थी प्रयोजयेत् ॥ - चरक - 1२२

सृष्टि क्रम में सूर्य की उत्पत्ति में कई मन्त्र हैं। जैसे 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् (ऋ०१०-१९०-३) और शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु (ऋ०७-३५-८)। इस सूर्य की धूप के सेवन से कई रोग दूर होते हैं। प्रातः काल की सूर्यरश्मियों के प्रभाव से पीलिया रोग मिटता है (१-५-११)। जल से भी रोगनिवृत्ति का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है-

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामभूत प्रशस्तये । - ऋग्वेद-१-२३-१९

अर्थात् हे विद्वानों! तुम अपनी उत्तमता के लिये जल में जो रोगों के निवारण करने वाला अमृतरूप रस तथा औषध है, उसको जानो।

यह बड़े सौभाग्य की बात है कि - यूनेस्को ने ऋग्वेद की पाण्डुलिपियों को विश्व धरोहरों की श्रेणी में डाल भारतीय वैदिक साहित्य की प्राचीनता तथा उपयोगिता को स्वीकारा है।

यजुर्वेद

यजुर्वेद में यज्ञानुष्ठान सम्बन्धी उपयोगी मन्त्रों का संकलन है। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र इसी वेद का है। इसमें गद्यात्मक मन्त्र की अधिकता है। वैसे सभी वेदों में यज्ञों की महिमा गायी गई है। ऋग्वेद के मन्त्र यज्ञ में काम आते हैं, यज्ञ में साम वेदों का गान होता है, और अथर्व वेद विहित प्रयोग यज्ञ में सम्पन्न होते हैं। यजुर्वेद तो है ही यज्ञ करने का वेद। मत्स्य पुराण के अनुसार यजुर्वेद के अधिक प्रचार-प्रसार के कारण त्रेतायुग में यज्ञकर्म की प्रधानता थी। भगवान् श्रीकृष्ण प्रमाणित करते हैं कि यज्ञ, दान और तप ये तीन मनीषियों के पावन कर्म हैं -

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ - गीता -18-5

अग्नि को देवताओं का मुख कहा गया है 'अग्निर्हि देवतानां मुखम् (शतपथ ब्राह्मण ३-७-२-६)। जिस देवता के निमित्त यज्ञ किया जाता है, उस देवता का उस समय ध्यान करने से यज्ञ की वह हवि उस देवता तक पहुँचती है. और यज्ञकर्त्ता भी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। देवताओं ने भी अपनी सर्वविध सिद्धि इस यज्ञ से ही प्राप्त की है-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। - यजुर्वेद 31-16

चरकसंहिता के विमानस्थान अध्याय आठ में शिष्यों के उपनयन महोत्सव का विस्तार से वर्णन किया है। इसमें समस्त यज्ञविधि का वर्णन करते हुये आचार्य यज्ञ करते है और शिष्य भी गुरुजन का अनुसरण करते हैं। इनमें पलाश (ढाक), इंगुदी (हिंगोट), उदुम्बर (गूलर) आदि समिधाओं को उपयोग में लाने का निर्देश है, जो पर्यावरण को विशुद्ध करने में बड़ी भूमिका निभाती है। इसी प्रकार सुश्रुत संहिता (सूं-२) में तथा काश्यपसंहिता में भी यज्ञ विधान का वर्णन मिलता है। रोगों की मुक्ति हेतु वेदों का श्रवण-मनन तथा जप- होम की उपादेयता प्रदर्शित करते हुये आचार्य चरक कहते हैं-

जपहोमप्रदानेन वेदानां श्रवणेन च।
ज्वराद् विमुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च॥ - चरक चि०३-३१५

निरुक्तकार यास्क यजु: शब्द यज धातु से निष्पन्न मानते हैं जिससे यजुर्वेद का अर्थ ही यज्ञस्वरूप वेद होता है। इसमें रुद्र (शिव) का विशेष स्तवन किया गया है। इस वेद में भी कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड एवं उपासना काण्ड का वर्णन मिलता है।

सम्प्रदाय के आधार पर यह वेद दो भागों में विभक्त है- आदित्यपरम्परा से प्राप्त को शुक्ल यजुर्वेद तथा ब्रह्मपरम्परा से प्राप्त करने को कृष्ण यजुर्वेद कहा जाता है।

"सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्' इस आयुर्वेदोक्त सीख को यजुर्वेद इस प्रकार व्यक्त करता है कि- मनुष्यों को चाहिये कि सबसे पहले शरीर को स्वस्थ बनाये रखने हेतु पथ्य का पालन करें, उपयुक्त ओषधियों का सेवन करें तथा स्वास्थ्य के नियमों का पालन करें क्योंकि आरोग्य के बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान नहीं हो सकता-

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत:॥ -यजु-12-76

एक प्राणाचार्य को सदा यह यजुर्वेदोक्त प्रार्थना करनी चाहिये -

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्यं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि।। - यजु०१९-९

हे प्रभो ! आप तेजस्वरूप हैं मुझे भी तेजस्वी बना। तेरे तेज से तेजस्वी होकर मैं निस्तेजों में तेज का संचार कर दूँ। आप पराक्रमशील है मुझ में भी स्थिर पराक्रम फूंक दें। तेरे पराक्रम से पराक्रमी से होकर मैं आरोग्यप्रद शिक्षाओं को चारों ओर फैला सकूं। आप बलस्वरूप है। मुझ में भी बल का आधान कर दो। तेरे बस से बलशाली हो कर में संसार से अज्ञान, अन्याय और अभाव को दूर कर दूँ। तू ओजस्वी है मुझे भी ओज प्रदान कर, जिससे मैं पापियों को, रोग राक्षसों को परास्त कर सकूं। आप दुष्टों पर क्रोधधारी है मुझे भी वह क्रोध प्रदान कर जिससे वे भयभीत होकर अपनी दुष्टता का परित्याग कर दें। इसके साथ ही मुझे भी आपकी तरह सहन- शील बना दे। वयं राष्ट्र जागृयाम पुरोहिता:' (यजु. 9-२३)|

सामवेद -

इसमें गायन पद्धति के निश्चित मन्त्र है, जो भारतीय संगीत का परिचय देते हैं। इसके गायन की शिक्षा देने वाली तीन, शाखायें हैं - नारदीय शिक्षा, गौतम शिक्षा और लोमश शिक्षा। ये सभी - ऋषि- महर्षि चरकोक्त संगोष्ठी (चरक सू० अ० एक) में उपस्थित हुये थे। संगीत शास्त्र की उत्पत्ति इसी वेद से हुई है। भरत मुनि ने भी सामभ्यो गीतमेव च' कह कर सामवेद से ही गीत की उत्पत्ति मानी है। - वेणुवादनप्रवीण लोकरक्षक भगवान् श्रीकृष्ण अपनी विभूति सामवेद को मानते हैं- "वेदानां सामवेदोऽस्मि (ग्रीम १०-२२)।

अशान्ति, अनिद्रा, स्नायुओं की दुर्बलता और मानसिक व्यग्रता में संगीत से अच्छा लाभ मिलता है। इससे रोगों के नाश में भी सहायता मिलती है। कहा गया है-

व्याधिनाशे शत्रुनाशे भयशोक विनाशने ।
पंचस्वरा: प्रगातव्या: ग्रह शान्त्यर्थकर्मणि ॥

खमास, भीम पलाशी आदि रागनियों के गाने से वात का, मेघ मल्हार, गौड मल्हार आदि रागनियों से पित्त का तथा भैरवी, आसावरी आदि रागनियों से कफ का शमन होता है।

अथर्ववेद-

अथर्व का अर्थ है - कमियों को हटाकर ठीक करना। अतः इसमें यज्ञसम्बन्धी तथा व्यक्तिसम्बन्धी सुधार करने

वाले अधिक मन्त्र हैं। इस वेद का नामकरण अन्य वेदों की भाँति शब्द- शैली पर नहीं है, अपितु इसके प्रतिपाद्य विषय के अनुसार हैं। इस वैदिक शब्द राशि का प्रचार एवं प्रयोग मुख्यतया अथर्व नामक महर्षि द्वारा किया गया। इसलिये भी इस वेद का नाम अथर्ववेद है। इसे ब्रह्मवेद एवं भिषग्वेद भी कहा जाता है। आयुर्वेद इसी अथर्ववेद का उपवेद है। सुश्रुत संहिता में कहा गया है - इह खल्वायुर्वेदोऽष्टाङ्ग उपाङ्गमथर्ववेदस्य- (सु०सू० 1-5)।

अथर्ववेद का कथन है कि 'मधुमती वाचमुदेयम्' (अथर्व० १६-2-2) अर्थात् हम अति प्रिय और मीठी वाणी बोलें। कवि कृपाराम कहते हैं - 'कहे कृपाराम सब सीखिबो निकाम, एक बोलिबो न सीख्यो सब सीख्यो गयो धूल में'। वैसे तो यह सीख सभी जनों के लिये है किन्तु एक चिकित्सक के लिये यह बहुत अनिवार्य है क्योंकि चिकित्सक को शास्त्र का ज्ञाता होने के साथ मधुरभाषी भी होना चाहिये। चिकित्सक की मीठी वाणी एक रोगी के लिये सौ ओषधियों से बढ़कर है। तभी तो सि.भे. मणिमाला में कहा गया है कि वैद्य आयुर्वेद पूर्ण ज्ञान रखने वाला हो, विविध प्रयोगों को तैयार करने वाला हो तथा मधुरभाषी हो - अधीतायुर्वेदो विविधरसकर्त्ता मधुरगी:।

सुश्रुतसंहिता के सू० अ० सप्तम में वर्णित है - यन्त्रशतमेकोत्तरम्। अत्र हस्तमेव प्रधानतमम्....। अर्थात् शल्यशास्त्रोपयोगी यन्त्र यद्यपि एक सौ एक हैं परन्तु इनमें हाथ ही प्रधान यन्त्र है। यहाँ हाथ की उपयोगिता हाथ में विविध यन्त्रों को ग्रहण करने तथा चिकित्सा में हस्त कौशल के होने में है। चिकित्सक इन हाथों से ही रोग का निदान करता है, तथा रोगों का उपचार करता है। चिकित्सक का जितहस्त 'पीयूषपाणि' होना उसके सुयश को प्रकट करता है- 'सुधाहस्तो वैद्यो नरवर चिकित्सास्वधिकृतः।

चिकित्सक के इस हस्त कौशल एवं सुधाहस्त को ध्वनित करने वाले कई मन्त्र अथर्ववेद में मिलते हैं -

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः। - अथर्व० 4-13-6

मेरा यह हाथ ऐश्वर्ययुक्त है और यह दूसरा हाथ उससे भी अधिक शक्तिशाली और चमत्कारपूर्ण है।

कृतं मे दक्षिणं हस्ते जयो मे सत्य आहितः। - अथर्व० ७-५०-८

मेरे दायें हाथ में कर्म है, पुरुषार्थ है और बायें हाथ में विजय रखी है।

शतहस्तं समाहर सहस्रहस्तं संकिर। - अथर्व ३- २४-५

हे मानव तू सैकड़ों हाथों की शक्तियों वाला होकर ग्रहण कर और सहस्रो हाथों की शक्तियों वाला हो कर वितरण भी कर।

हमारे जीवन में ब्रह्मबल (शास्त्रज्ञान) और क्षात्रबल (शस्त्रावचारण) मे दोनों ही होने चाहिये। आचार्य द्रोण ने द्रुपद को सम्बोधित करते हुये स्वयं के लिये यही तो कहा था-

अग्रतश्चतुरो वेदा: पृष्ठत: सशरं धनु।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शास्त्रादपि शरादपि ।।

अर्थात् हे द्रुपद ! मेरे आगे चारों वेद हैं और पीछे धनुष तथा बाण है। शास्त्र और शस्त्र दोनों ही प्रकार से मैं तुम्हारा मान-मर्दन करने को तैयार हूँ। इसी प्रकार अष्टांग आयुर्वेद के विज्ञाता को उपयुक्त शास्त्रानुसार उपयुक्त औषध प्रदान करने वाला होने के साथ ही आवश्यकता पड़ने पर शस्त्रावचारण में निपुण एक शल्य कोविद भी होना चाहिये। इस सम्पूर्ण ज्ञान के जिये चरक-सुश्रुत दोनों संहिताओं पर पूर्ण अधिकार होना चाहिये।

वेदमर्मज्ञ स्व. पं० श्री मोतीलाल शास्त्री के कथनानुसार - अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, आदित्य से सामवेद तथा सोम से अथर्ववेद उत्पन्न होता है। वैदिक साहित्य में सोम के अनेक अर्थ है। अनेक मन्त्रों में यह परमात्मा का वाचक है किन्तु मुख्य रूप से सोम से चन्द्रमा अर्थ ही ग्रहण किया जाता है और यह ओषधिनाथ कहा गया है। भगवान कृष्ण भी गीता (१५-१३) में कहते हैं - पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मक: (मैं ही अमृतमय चन्द्रमा हो कर सब ओषधियों को पुष्ट करता हूँ) । चन्द्रमा में दो शक्तियाँ है - प्रकाशिका एवं पोषणिका । इन दोनों शक्तियो से यह विश्व का उपकार करता है। रघुवंश (२-७३) में भी इसे औषधिनाथ कहा है। अथर्ववेद में ईश्वर, जीव और प्रकृति आदि के वर्णन के साथ ही शरीर रचना, रोग विज्ञान एवं औषधविज्ञान पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद में जिन आयुर्वेदीय विषयों का संक्षिप्त वर्णन मिलता है, अथर्ववेद में उनका विशद वर्णन मिलता है।

अथर्ववेद की कुल नौ शाखायें हैं जिनमें वर्तमान में केवल शौनकीय और पैप्पलाद से दो शाखायें ही मिलती है जिनमें आयुर्वेद सम्बन्धी ज्ञान भरा पड़ा है तब ही तो इसे 'भिषग्वेद' के नाम से जाना जाता है। इसमें लगभग २८८ वनौषधियों का उल्लेख मिलता है, और इन औषधियों सुखप्रद स्वास्थ्यप्रद होने की प्राथनायें की गई हैं-

सर्वा समग्रा ओषधि बोधन्तु वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ।। - अथर्व० 8-7-19

(ओषधियाँ अनुकूल, मेरे कथन समान हों।
विपदा हरे समूल, स्वास्थ्य संपदा सतत दें ॥)

अथर्ववेद में मुख्यतः चार प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों का वर्णन मिलता है-

1. **आथर्वणी -** इस पद्धति द्वारा जल प्रोक्षण कर चिकित्सा की जाती है। इस संप्रदाय के लोग मणियों के द्वारा भी चिकित्सा करते थे। वे चिकित्सक योगविद्या में भी निपुण थे जो मुख्यतः मानसिक रोगों की चिकित्सा करते थे।

2. **आंगिरसी -** शरीर की विविध ग्रन्थियों से निःसृत रसों का विशेष ज्ञान रखते थे। इस पद्धति में दैवव्यपाश्रय औषध का वर्णन है।

3. **दैवी -** इस चिकित्सा पद्धति में जल, वायु, अग्नि, सूर्य आदि द्वारा की गई चिकित्सा का वर्णन मिलता है। यह पूर्णतया प्राकृतिक चिकित्सा थी।

4. **साधारणी -** यह जन साधारण की सामान्य चिकित्सा थी जो प्राय: वनौषधियों द्वारा की जाती थी।

अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड का तेरहवाँ सूक्त रोगनिवारण-सूक्त है, जिसके ऋषि शंताति तथा देवता चन्द्रमा एवं विश्वेदेवा हैं। इसके माध्यम से ऋषि ने रोगियों की रोगमुक्ति के लिये देवों से प्रार्थना की है। सूक्त का एक छन्द है-

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।
त्रायन्ता विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥

हे देवो! इस रोगी की रक्षा करो। हे मरुतों के समूहो ! रक्षा करो। सब प्राणी रक्षा करें। जिससे यह रोगी रोगमुक्त हो जाये।

अथर्ववेदीय पैप्पलाद शाखा का एक दीर्घायुष्य सूक्त है, जिसमें ऋषि पिप्पलाद ने देवों, ऋषियों, गन्धर्वों, लोकों, ओषधियों आदि से दीर्घायु की कामना की है-'दीर्घमायुः कृणोतु मे'।

अन्त में 'अथभूदयां प्रति' इस आयुर्वेक्त सूक्ति को हृदयंगम करते हुये वेदों की इन सूक्तियों का भी मनन करते रहें - 'स्वस्ति पन्थामनु चरेम् (ऋग्वेद ५-५१-१५) हे प्रभो ! हम कल्याण मार्ग के पथिक बनें। सुमृडीको भवतु विश्ववेदा (यजुर्वेद 20-51) (सर्वज्ञ प्रभु हमारे लिये सुखकारी हो)। जनाय उर्जं वरिवः कृधि (सामवेद-८४२) (लोगों में श्रेष्ठ बल पैदा करो) शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः (अथर्व० ३-१२-६)। हम स्वभिलाषित पुत्र-पौत्रादिसे परिपूर्ण हो कर सौ वर्षों तक जीवित रहें)। शुभम् भूयात्॥

अस्माकं ब्रह्माण्डम्

(नूत्नानुसन्धानम्)

डॉ. रामदेव साहूः
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थानम्, जयपुरम् (राजस्थानम्)

अस्माकं ब्रह्माण्डं यस्यानाहः परिणाहश्च षट् खर्व (600000000000) कि.मी. वर्तते, तस्य केन्द्रे सूर्यो विद्यते। ब्रह्माण्डस्य परिधेः समानान्तरमूर्ध्वखगोले वायव्यतः उत्तरपूर्वमतिक्रम्याग्नेयपर्यन्तं एक कोटि-षट्चत्वारिंशल्लक्षनवति सहस्र-चतुश्शतं (1,46,90,400) कि.मी. परिमाणकं स्थानं रिक्तमस्ति। अस्मिन् ग्रहनक्षत्रतारकापृथिव्यादीनां विद्यमानता नास्ति। सूर्यात् वायव्ये पञ्चकोटि-त्रिचत्वारिंशल्लक्ष-षण्णवतिसहस्रं (5,43,96,000) कि.मी. दूरं सुमेरुः विद्यते। अयमेव ब्रह्माण्डस्योत्तरीयं ध्रुवमुच्यते। अस्मात् स्थानात् पृथिव्याः क्षेत्रम् आरभते। सूर्यादाग्नेयेऽप्येतत्परिमाणदूरमेव कुमेरुः विद्यते। अयं च ब्रह्माण्डस्य दक्षिणं ध्रुवमस्ति। अत्र पृथिव्याः क्षेत्रं समाप्यते।

एवं चेद्दशकोटि - सप्ताशीतिलक्ष-द्वानवतिसहस्रं (10,87,92,000) कि.मी. परिमाणकानाहपरिणाहमयं स्थानं पृथिव्याः क्षेत्रं लक्ष्यते। अस्मिन् क्षेत्रे ब्रह्माण्डस्य परिधेः समानान्तरं वायव्यतः आरभ्य अस्माकं पृथिवीपर्यन्तिके भागे तिस्रोऽन्या अपि पृथिव्यः आसन्। एवमेवास्माकं पृथिव्या आरभ्याग्नेयपर्यन्तिके भागेऽपि तिस्रोऽन्याः पृथिव्यः आसन्। एवं प्रारम्भे सप्तस्थाने पृथिव्या अस्तित्वमासीत्। तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा अवर्तत। कालान्तरे जम्बूद्वीपीयभूमेरतिरिक्तम् अष्टादशद्वीपानां स्थितिः संजाता। एते अष्टादशद्वीपाः वर्तमाने विद्यन्ते।

अस्माकं दृश्यमाना पृथिवी जम्बूद्वीपस्यावशिष्टभागोऽस्ति। वर्तमाने इयं ब्रह्माण्डस्य नैऋत्ये विद्यते। इयं सूर्यात् द्वादशकोटि (120000000) कि.मी. दूरमधः संस्थिताऽस्ति। अस्माकं पृथिव्या ऊर्ध्वं नक्षत्रमण्डलं संस्थितं वर्तते। इदं नक्षत्रमण्डलं बुधशुक्रयोः मध्यवर्त्तिनि स्थाने उत्तरपश्चिमस्यां त्रयोदशलक्षपञ्चचत्वारिंशच्छहस्र-शतद्वयं (13,45,200) कि.मी. परिमाणे विस्तृतमस्ति। नक्षत्रमण्डलादूर्ध्वं परमेष्ठिमण्डलमस्ति। इदं परमेष्ठिमण्डलमपि सूर्यादुत्तरपश्चिमस्यां तावत्येव परिमाणे विस्तृतमस्ति। परमेष्ठिमण्डलस्य पूर्वतः पश्चिमस्यामानाहः द्वादशलक्ष-चतुरशीतिसहस्र-चतुश्शतं (12,84,400) कि.मी. परिमाणेऽस्ति, किन्तु उत्तरतो दक्षिणस्यामस्य परिणाहः

द्वादशलक्ष-द्वासप्ततिसहस्रं (12,72,000) कि.मी. परिमाण एवास्ति। अस्य परमेष्ठिमण्डलस्योत्तरस्यां दक्षिणस्यां च चतुर्दशसहस्रचतुश्शतं (14,400) कि.मी. क्षेत्रे प्रवहवायुर्विद्यते। अयमेव वायुः ग्रहनक्षत्रतारकादीन् गतिशीलान् विदधाति। ग्रहमण्डलस्य स्थितिः नक्षत्रमण्डलात् परमेष्ठिमण्डलात च पूर्वस्यां वर्त्तते, किन्तु अस्माकं पृथिव्याः दक्षिणपूर्वस्यां प्रतीयमाना भवति। अस्माकं दृश्यमानपृथिव्या आनाहः परिणाहश्च द्वादशलक्ष-चतुष्षष्टिसहस्र-अष्टशतं (12,64,800) कि.मी. परिमाणकोऽस्ति। अस्याः दक्षिणभागे अष्टलक्ष-चत्वारिंशच्छहस्रं (8,40,000) कि.मी. क्षेत्रे सूर्यस्य प्रकाशो नैव निपतति। केवलं दृश्यमानपृथिव्याः चतुर्लक्ष-चतुर्विंशतिसहस्र-अष्टशतं (4,24,800) कि.मी. परिमाणके क्षेत्रे एव सूर्यस्य प्रकाशो निपतति। अतएव एतावानेव भूभागः प्रकाशते। अवशिष्टन्त्वन्धकारे एवास्ति।

सूर्यस्य बिम्बं 944.25 कि.मी. दूरपर्यन्तमेव प्रभावि भवति। सूर्योदयकाले यदा सूर्यः पृथिव्याः पार्श्वे तिष्ठति तदापि इदं बिम्बं उक्तदूरपर्यन्तं प्रभावं निपातयति। तदानीं चन्द्ररश्मयः पृथिव्या उपरिभागे विद्यमाना भवन्ति। तासु रश्मिषु जलीयकणानामाधिक्यात् सूर्यबिम्बं चन्द्ररश्मिषु प्रतिबिम्बितं भवति। तदा वयं सूर्योदयः सञ्जात इति निश्चिनुमः किन्तु याथार्थ्येन तु तदा सूर्योदयो न भवति, अपितु प्रतिबिम्बितं सूर्यमेव दृश्यमानं भवति। याथार्थ्ये तु सूर्यः षट्पंचाशत् (56) मिनटान्तराले क्षितिजं प्रयाति। एवं चास्माकं प्रतीयमानसूर्योदय-वास्तविकसूर्योदययोर्मध्ये षट्पंचाशत् (56) मिनटपरिमाणावधिकमन्तरं भवति। सायंकाले सूर्यरश्मिषु विद्यामानानाम् आग्नेयकणानां अधिक्यात् चन्द्रबिम्बं सूर्यकिरणेषु प्रतिबिम्बितं न भवति, अतएव चन्द्रोदयस्तु सर्वदा वास्तविक-समये एव भवति।

सूर्यः परमेष्ठिमण्डलं परिक्रामति। अनेनैव तदधोविद्यमानस्य नक्षत्रमण्डलस्य तातेऽप्यधोविद्यमानायाः पृथिव्याश्च परिक्रमणं सम्भवति। एवमेव चन्द्रः नक्षत्रमण्डलं परिक्रामति। तेनापि पृथिव्याः परिक्रमणं सम्भवति। एवं पृथिवी न परिभ्रमति, केवलं सूर्यचन्द्रावेव गतिं कुरुतः । पृथिवी तु अचला वर्तते। चन्द्रः अस्माकं दृश्यमानपृथिव्याः दशलक्षषट्पञ्चाशत्सहस्रं (10,56,000) कि.मी. दूरमस्ति, सूर्यश्च द्वादश कोटि (120000000) कि.मी. दूरमस्ति। अतः चन्द्रेण पृथिव्या वा सूर्यस्य परिक्रमणं न कदापि सम्भाव्यते। न च सूर्यः चन्द्रो वा पृथिवीं परिक्रामति। पृथिव्याः स्थिरतायाः स्पष्टं प्रमाणमपि ध्रुवमेवास्ति। ध्रुवं पृथिव्या उत्तरस्यां तारकारूपेण सुनिश्चिते एकस्मिन्नेव उदयबिन्दौ दृश्यते। यदि पृथिवी सूर्यं पर्यक्रामिष्यत् तदा ध्रुवः कथं सर्वदोत्तरस्यामलक्ष्यत। यतो हि, कस्मादपि स्थिरवस्तुनः अन्यत् स्थिर वस्तु एव सर्वदा एकस्यां दिशि अवस्थितं भवितुं शक्नोति। कस्माच्चिदपि गतिशीलवस्तुनः अन्यत् स्थिरवस्तु सर्वदा एकस्यां दिशि नैव स्थातुं शक्नोति, यतो हि यथा यथा गतिशीलवस्तुनो दिक्परिवर्तनं भवति, तथा तथा तत्रत्यदर्शकदृष्टे स्थिरवस्तुन्यपि दिक्परिवर्तनं प्रतीतं भविता।

इदमपि विचारणीयं वर्तते यत् पृथिवी यदि सूर्यं पर्यक्रामिष्यत् तदा पृथिव्याः प्रतिबिम्बं चन्द्रकक्षातः लक्ष्यमाणेषु द्वादशराशिष्वेव निपतितं स्यात्, न तु केवलं षट्स्वेव राशिषु। यतो हि सूर्यो भवता केन्द्रे सुस्थिरोऽभिमतः। अस्यां स्थितौ प्रत्येकं राशिः सूर्यमभितो विद्यमानायाः पृथिव्या विपरीतायां दिशि अभविष्यत्। सर्वेषु च राशिषु पृथिव्याः प्रतिबिम्बं समानरूपेण चन्द्रकक्षातोऽपि अद्रक्ष्यत्। किन्तु नैवं भवति। चन्द्रकक्षायां स्थितेषु षट्स्वेव राशिषु पृथिव्याः प्रतिबिम्बं निपतति। अतएव याथार्थ्यं किमिति विचार्यते।

सूर्यचन्द्रयोरुभयोः परिक्रमणवृत्तं त्रयोदशलक्ष-पञ्चचत्वारिंशत्सहस्र-शतद्वयं (13,45,200) कि.मी. परिमाणकत्रिज्यायुतमस्ति। चन्द्रो यदा नक्षत्रमण्डलं परिक्रामति तदा तत्परिक्रमणेनैव पृथिव्या द्वादश लक्ष-चतुष्षष्टिसहस्र-अष्टशतं (12,64,800) कि.मी. परिमाणकानाहपरिणाहयुतस्य समग्रभागस्य सपरिधेरतिक्रमणं सम्भवति। चन्द्रस्य पृथिव्याः पूर्वस्यां सूर्यस्य चोत्तरस्यां संस्थितेरिदमतिक्रमणं पृथिव्याः दक्षिणभागे एव सम्भवति, यतोहि चन्द्रात् पूर्वस्यां सूर्यादुत्तरपूर्वस्यां चास्माकं पृथिव्या भागस्तदानीं नैव लक्ष्यमाणो भवति। इदमेव कारणमस्ति यत् चन्द्रकक्षातः ये षट्राश्यः पृथिव्या दक्षिणवर्त्तिन्यो भवन्ति, तेष्वेव पृथिव्याः प्रतिबिम्बं निपतत्ति। तस्मादेव सूर्यचन्द्रयोर्ग्रहणस्य स्थितिर्भवति। यतो हि यदि चन्द्रः स्वपरिक्रमणे पृथिव्याः कक्षां नातिक्रामिष्यत्, तर्हि कदापि सूर्यचन्द्रयोर्ग्रहणस्य स्थितिरपि नाभविष्यत्।

सूर्येण क्रियमाणस्य परमेष्ठिमण्डलीयपरिक्रमणस्य चतुरशीत्युत्तरशतं (184) मार्गाः सन्ति। एते मार्गाः मिथः उपर्युपरि आनुक्रमिका भवन्ति। सूर्यः षण्मासावधौ एषु गतिं कुर्वन् पुनः विपरीतक्रमेण तैरेव मार्गैः ततः षण्मासानन्तरं स्वकीयं वास्तविकं स्थानमुपायाति। एवं परमेष्ठिमण्डलस्य परिक्रमणे सूर्यः द्वादशमासावधिं यावत् गतिं करोति। इदमेव गतिकर्म संवत्सरचक्रमप्युच्यते। एवमेव चन्द्रेण क्रियमाणस्य नक्षत्रमण्डलीयपरिक्रमणस्यापि पञ्चदश (15) मार्गाः सन्ति। चन्द्रः प्रतिदिनं मार्गपरिवर्तनं कृत्वा परिक्रामति। एते चन्द्रमार्गा अपि सूर्यमार्गा इव मिथः उपर्युपरि आनुक्रमिका भवन्ति। चन्द्रः पञ्चदशसु दिवसेष्वेव पञ्चदशमार्गेषु गतिं कुर्वन् पुनः विपरीतक्रमेण तैरेव मार्गैः पञ्चदशदिवसानन्तरं स्वकीयं वास्तविकं स्थानमुपायाति। एवं नक्षत्रमण्डलस्य परिक्रमणे चन्द्रः एकमासावधिं (त्रिंशद्दिवसात्मकं) यावत् गतिं करोति।

यदा सूर्यः परमेष्ठिमण्डलस्य एकं परिक्रमणं समाप्नोति तदा चन्द्रः नक्षत्रमण्डलस्य द्वादश परिक्रमणानि समाप्नोति। नक्षत्रमण्डल-परमेष्ठिमण्डलयोः परिक्रमणावध्योः पञ्चषादिवसात्मकमन्तरं सूर्यचन्द्रयोः गत्यन्तरादेव सम्भवति। अतएव सौरचान्द्रवर्षमाने भिन्नता भवति।

गुरु -महिमा

डॉ० शिवचरण शर्मा "साहित्याचार्य"
प्रधानाचार्यः, राजकीय-वरिष्ठ-उपाध्याय-संस्कृत-विद्यालयः
महापुरा, जयपुरम् (राजस्थानम्)

"गुरु" इस दो अक्षरों के शब्द का अर्थ इतना गरिमापूर्ण व व्यापक है कि शिक्षक, अध्यापक, व्याख्याता, प्रोफेसर आदि शब्द इसके आस-पास भी नहीं ठहरते। कोष के अनुसार "गुरु" शब्द अनेक अर्थो में प्रसिद्ध है, जिनमें मुख्य हैं – गरिष्ठ, भारी, प्रशस्त बड़ा, लम्बा, विस्तृत, महत्त्वपूर्ण, आवश्यक, दुःसाध्य श्रद्धेय, आदरणीय, अभीष्ट, प्रिय, अहंकारी ज्येष्ठ पुरुष, अध्यापक स्वामी प्रधान अधीक्षक, बृहस्पति, नये सिद्धान्त का व्याख्याता धार्मिक गुरु बृहस्पति व पुष्य नक्षत्र आदि। पारिभाषिकरूप से गुरु वह है जो गायत्री मन्त्र का उपदेश करे और शिष्य को वेद का अध्यापन करे-

स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति। (याज्ञ. 1/34)

"गु" का अर्थ अन्धकार व "रु" का अर्थ तेज है। अतः गुरु वह होता है, जो। अज्ञानरूपो अन्धकार को दूर कर हृदय में प्रकाश का संचार कर दे। जैसा कि प्रसिद्ध भी है -

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।। (गुरुगीता - स्कन्दपुराणे)

इस प्रकार गुरु, अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे हुए जीव की आँखों को ज्ञानरूपी काजल के प्रयोग से खोल देने वाला होता है। शास्त्रवचनानुसार "गु" से माया आदि गुण एकट होते हैं "गुरु" से ब्रह्म प्रकाशित होता है व जो माया भ्रान्ति को विनष्ट करता है वह गुरु कहलाता है।

गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः।
सकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्तिविनाशनम् ।।

भारतीय संस्कृति में गुरु महिमा की पराकाष्ठा प्राप्त होती है। गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा परब्रहा माना गया है, क्योंकि गुरु में ब्रह्मा के समान नवीन आध्यात्मिक ज्ञानसृष्टि, विष्णु के समान शिष्यपालन तथा शिव के समान अज्ञान व माया के संहार का सामर्थ्य विद्यमान है। वस्तुतः श्रेष्ठ गुरु त्रिनेत्ररहित शिव, चतुर्भुजरहित विष्णु व चतुर्मुखरहित ब्रह्मा है -

अत्रिनेत्र सर्वसाक्षी, अचतुर्बाहुरच्युतः ।

अचतुर्वदनो ब्रह्मा, श्रीगुरुः कथितः प्रिये ।। (गुरुगीता)

इस प्रकार गुरु शिष्य के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर उसके हृदय को, उसके जीवन को प्रकाशित करने वाला होता है। गुरु ही शिष्य का अपने वास्तविक आत्मस्वरूप से साक्षात्कार कराता है। वही आत्मा के परमात्मा से मिलने का मार्ग प्रशस्त करता है, इसीलिए कहा गया है -

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय ।

बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय ।।

वस्तुतः गुरु शब्द से आधुनिक समय में तीन प्रमुख अर्थ द्योतित होते हैं - आध्यात्मिक गुरु, शास्त्रज्ञान व जीवनमूल्यों की शिक्षा देने वाले आचार्य तथा निर्धारित पाठ्यक्रम पढाने वाले शिक्षक। यहाँ ध्यातव्य है कि शिष्य के हृदय से जुड़कर उसके सर्वविध कल्याण का प्रयत्न करने वाले व्यवसायी शिक्षक भी "गुरु' का दर्जा प्राप्त कर लेते हैं !

गुरु और शिष्य का संबंध ही ऐसा है कि दोनों के चित्तों की समानता अनिवार्य है। गुरु के आशीर्वाद से शिष्य यश को प्राप्त करता है तथा तेजस्वी छात्रों के माध्यम से गुरु की कीर्ति फैलती है। इसीलिए गुरु-शिष्य संबंधों की अनोखी व्याख्या हमारे उपनिषदों मे प्राप्त होती है

अथाधिविद्यम्। आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवास्युत्तररूपम्।

विद्या सन्धिः। प्रवचनं संधानम्।

यहाँ विद्याप्राप्ति का रहस्य समझाते हुए बताया गया है, कि विद्यारूप संहिता में गुरु तो पूर्व वर्ण है और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गुरु की सेवा करने वाला विद्याभिलाषी शिष्य परवर्ण है तथा गुरु और शिष्य के संबंध से उत्पन्न होने वाली विद्या या ज्ञान ही यहाँ सन्धि है। इस विद्यारूप सन्धि के प्रकट होने का कारण है - प्रवचन अर्थात् गुरूपदेश तथा शिष्य द्वारा श्रद्धापूर्वक सुन-समझकर उसे धारण करना -यही संधान है। जो व्यक्ति इस रहस्य को समझकर विद्वान गुरु की सेवा करता है, वह अवश्य ही विद्या प्राप्त कर विद्वान् हो जाता है। इस तरह के उच्चकोटिक शैक्षणिक सिद्धान्तों के बल पर ही भारतवर्ष विश्वगुरु कहलाया करता था।

वर्तमान में भी जो श्रेष्ठ शिक्षक हैं वे गुरु के गौरव की रक्षा करते हुए अपने शिष्यों के जीवन को श्रेष्ठ व सार्थक बनाने का प्रयास करते हैं। आज के इस भौतिक युग में शिक्षा का भी व्यवसायिकरण हो चुका है। शिक्षा के बल पर आजीविका प्राप्त करना तथा भौतिक संसाधन जुटाना ही आज के युवाओं का परमप्रयोजन बन गया है। ट्यूशन की दुकानें खुल गई हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में ऐसे व्यवसायी गुरुओं के विषय में क्या खूब कहा है -

हरहिं शिष्य धन शोक न हरहिं।

ते गुरु घोर नरक मँह परहिं ||

कविकुलगुरु कालिदास ने भी आजीविकामात्र के लिए ही शिक्षण व्यवसाय में आने वाले तथा ज्ञान को बेचने वाले शिक्षकों को वणिक बताया है-

लब्धास्पदोऽस्मीति दिवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।

यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ||

शिक्षक का दायित्व है कि वह अपने शिष्य की आन्तरिक शक्तियों को पहचानकर उन्हें प्रकाश में लाने तथा उसके सर्वांगीण विकास हेतु सर्वदा प्रयत्नशील रहे। शिष्य का भी कर्तव्य है कि वह श्रद्धा से गुरु की सेवा करते हुए जिज्ञासापूर्वक ज्ञानार्जन हेतु सर्वदा सन्नद्ध रहे। श्रीमद्भगवद्गीता में भी ज्ञानप्राप्ति का यही मार्ग बताया गया है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।। (4 / 34)

गुरु की महिमा का कहाँ तक वर्णन किया जाय ? गुरु ही संसार सागर में भटक रहे जीवों का उद्धार करने वाले हैं। वे शिष्य सौभाग्यशाली हैं जिन्हें सद्गुरु सुलभ हो गए हैं। क्योंकि भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरुकृपा आवश्यक है। अतः सभी का दायित्व है कि वे अपने में सद्गुरुप्राप्ति की पात्रता उत्पन्न करें। सद्गुरु ही शारीरिक व मानसिक सन्तापों का शमन करने में सर्वथा समर्थ हैं। संसार में हर वस्तु सुलभ है किन्तु सद्गुरु का मिलना दुर्लभ है अतः हर कीमत पर उन्हे प्राप्त कर आत्मसाक्षात्कार व सर्वविध अभ्युदय ही मानवमात्र का परम लक्ष्य है। सन्त कबीरदासजी के शब्दों में-

यह तन विष की बेलड़ी, गुरु अमृत की खान।

सीस दिए भी गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।!

शिक्षागुरुओं के समक्ष तो शीश झुकाकर विनय - प्रदर्शन मात्र भी पर्याप्त है किन्तु आत्मोन्नति के पथिकों के लिए तो गुरु ही ध्यातव्य पूजनीय, जपनीय व कृपाप्राप्ति हेतु आराधनीय हैं। अतः आत्मकल्याण चाहने वाले साधकों को सद्गुरु के समक्ष स्वयं को समर्पित कर उनकी आज्ञानुसार ही संसार में आत्मकल्याणार्थ व विश्वोपकारार्थ प्रवृत्त होना चाहिए। ऐसे श्रेष्ठ शिष्य-समुदाय के लिए यही सन्देश सार्थक है -

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।

मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरोः कृपा ।।

सनातन धर्म का विज्ञान

अंजना शर्मा
प्रबन्धक - देवस्थान विभाग
राजस्थान सरकार

ऋषियो के द्वारा पुराणों में सनातन धर्म का वैज्ञानिक स्वरूप मिलता है, जिसे धर्म में रखकर महर्षियों ने इस विज्ञान को आम जन तक पहुँचाने का प्रयास किया है, आज आवश्यकता है इसे पुराणों से निकाल कर शोध के माध्यम से सामने लाने की कुछ तथ्य इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत कर रही हूँ।

(१) अश्वत्थ का महत्त्व

हमारे हिन्दु धर्मशास्त्रों में अश्वत्थ (पीपल) की महिमा बतायी गयी है। अथर्ववेद की शौनक संहिता में लिखा हैं:- 'अश्वत्थों देवसदन' (शौ. सं. ५/४/१) पीपल को देवताओं का घर ही कहा है। अतएव उसकी पूजा से भी देवताओं की पूजा होती है। 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां' (गीता १० / २६) कहकर भगवान् कृष्ण ने भी पीपल को अपनी विभूति स्वीकार किया है। उन्होंने सम्पूर्ण जगत् को अश्वत्थ का प्रतिरूप माना है (देखिये गीता का पुरुषोत्तम योग) ।अश्वत्व का ज्ञान से भी बहुत निकट का सम्बन्ध है। पीपल वृक्ष के नीचे ध्यान जप या मंत्रपाठ करने पर शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। महाज्ञानी काकभुशुण्डिजी पीपल के नीचे ही ध्यान एवं जप करते थे । तुलसीदास जी ने "रामचरितमानस' में लिखा है- "पीपर तरुतर ध्यान सो धरड़ी"हिन्दुधर्म के अनुसार विष्णु के २३ वें अवतार भगवान बुद्ध को भी ज्ञान की प्राप्ति अश्वत्थ वृक्ष के नीचे ही हुई थी। इससे पूर्व छठे अवतार दत्तात्रेय जी भी अश्वत्थ के नीचे ध्यान लगाया करते थे इस बात का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है।आयुर्वेद जो कि ऋग्वेद का उपवेद है, में भी अश्वत्थ की महिमा सबसे बढ़कर कही गई है। लौकिक दृष्टि से पीपल का वृक्ष पुत्रप्रदाता माना गया है। स्त्री के बन्ध्यात्वदोष को हटाने की इसके बीजों में अद्भुत क्षमता है।

(२) तुलसी का महत्त्व

अश्वत्थ की भाँति ही तुलसी का भी महत्त्व कम नहीं है। पौराणिकों के अनुसार राधा ही पृथ्वी पर तुलसी के रूप में उत्पन्न हुई थी अतः देव- मंदिरों में तुलसी का प्रयोग अवश्य किया जाता है। शास्त्रों में तुलसी के बारे में लिखा है:- "तुलसी काननं चैव गृहेयस्यावतिष्ठते । तद्गृहं तीर्थभूतं हि नायान्ति यमकिंकराः ॥"तुलसी के आसपास का स्थान पवित्र

माना गया है। उसमें मलेरिया की विषाक्त वायु को दूर करने की अद्भूत क्षमता है। मृत्यु के समय भी तुलसीमिश्रित गंगाजल पिलाया जाता है जिससे आत्मा पवित्र होकर सुखशांति से लोकान्तर की प्राप्ति करें।तुलसी की गन्धमात्र से ही मलेरिया के उपजीवी दूर भागते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी सब प्रकार के ज्वरों को हटाकर स्वास्थ्य प्रदान करती है। वैज्ञानिकों के अनुसार तुलसी का पौधा सर्वाधिक मात्रा में ऑक्सीजन छोड़ता है जो जीवों के लिए लाभकारी है अतः तुलसी की रक्षा करनी चाहिए।जिन रोगियों को स्वास्थ्यलाभार्थ गंगातट के पास जाने में असुविधा हो, उन्हें तुलसी सेनेटोरियम में रखा जाता है। वही लाभ उन्हें वहाँ मिल जाता है। आयुर्वेद के अनुसार तुलसी के बीज पुंस्त्व (वीर्य) वर्द्धक माने गये हैं।

(३) देवमंदिर में जाने का महत्त्व

जहाँ देवपूजा लक्ष्य होती है वहाँ शारीरिक तथा मानसिक लाभ अवश्य होता है। देवालय जाने के लिए हम सूर्योदय से पहले उठते हैं तथा सूर्योदय से पूर्व ही स्नान करते हैं। इससे रूप, तेज, आरोग्य, मेघा, आयु आदि की वृद्धि होती है। देवमंदिर प्रायः शहर के बाहर होते हैं। वहाँ कोई बगीची होती है। देवपूजा के लिए जब हम वहाँ जाते हैं तो हमें शुद्ध वायु मिलती है जिससे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा शक्ति का लाभ भी मिलता है।देवमंदिरों में चंदन लगाने की प्रथा है। चंदन लगाने से मानसिक आरोग्य बना रहता है तथा नियमित चंदन लगाने वाले मनुष्य को कभी नेत्र रोग नहीं होते, यह एक वैज्ञानिक रहस्य है। इसी प्रकार वहाँ धूप, दीप आदि सुगन्धित द्रव्यों के कारण मंदिर के चारों और दिव्य शक्ति का संचार रहता है, जिससे भूत बाधा की निवृत्ति तथा विषाक्त कीटाणु शक्ति का ह्रास होता है, शुद्ध वायुमंडल के प्रभाव से कुविचार अंदर नहीं रह पाते है।पुरुष शरीर पाँच तत्वों से बना होता है भिन्न-भिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न तत्त्वों की प्रधानता रहा करती है। इसीलिए हमारे हिन्दुधर्म में प्रमुख पाँच देवताओं (सूर्य, शिव, विष्णु, दुर्गा और गणेश) की पूजा कहीं गई है।ये पाँचों देवता एक-एक तत्त्व को क्रमशः प्रधानता के कारण धारण करते हैं। इधर तत्त्वविशेष को धारण करने वाले सांसारिक जीव पर उसके पूजन का अनुकूल प्रभाव होने से जीव को शुभफल प्राप्त होता ही है।

(४) चरणामृत का वैज्ञानिक महत्त्व

देवमंदिर में जाकर चरणामृत गृहण करना भी हमारे लिए अत्यंत लाभकारी है। चरणामृत को शास्त्रों में "अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनं" कहा गया है। चरणामृत हमारे लिए दिव्य औषधि का काम देता है। चरणामृत प्राय: शालगृह को स्नान करवाने पर बनता है। शालीगृह गंडकी नदी के पत्थर का बना होता है इस पत्थर में रोगनाश की

अद्भुत क्षमता होती हैं। इससे पानी का स्पर्श होने पर वह पानी रोगनाशी हो जाता है। चरणामृत की रोगरोधक क्षमता को रोके रखने के लिए ही उसे ताँबे के पात्र में रखा जाता है इसी चरणामृत में केसर अथवा कस्तूरी भी डालते हैं जिन्हें आयुर्वेद में 'जीवदा' और 'बलदा' कहा गया है।पुजारी लोग इसी चरणामृत को शंख में डालकर पुनः पवित्र कर लेते हैं। शंख में डालने पर इसमें एक और विशेषता आ जाती है कि यह दन्तरोगों को दूर करता है कुल मिलाकर चरणामृत को नियमित ग्रहण करने वाले मनुष्य की कदाचित् अकालमृत्यु नहीं होती तथा उसे मुख, दंत एवं पेट के रोग नहीं होते। पुराण का वचन है- 'विष्णुपादोदकं पीत्वा पापैरत्र विमुच्यते।

यह बात केवल अर्थवान नहीं अपितु नितान्त सत्य है तथा भक्तिभावपूर्वक इसे ग्रहण करने पर तो इसकी उक्त सामर्थ्य अवश्य क्रियावान् होकर साधक को सभी प्रकार का लाभ प्रदान कराती है।

(५) शंखनाद का महत्त्व

श्री जगदीशचन्द्र वसु ने अपने वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया था कि जहाँ तक शंखनाद जाता है वहाँ तक के अनेक विषाक्त कीटाणु नष्ट होकर वायुमंडल स्वच्छ हो जाता है। हमारे पूर्वज भी कहते थे- "शंख बाजे भूत भागे "

कीटाणु भी सूक्ष्मभूतों के अन्तर्गत होते हैं। गूंगों को भाषण शक्ति प्रदान करता है इसलिए छोटे-छोटे बच्चों के गले में शंखों की माला पहनायी जाती है इससे बच्चे जल्दी बोलने लगते हैं, उन्हें दृष्टिदोष भी नहीं होता। इसी प्रभाव के कारण मंदिरों में शंख से जल को छिड़का जाता है।

यूरोपीय वैज्ञानिकों ने भी शंख में मनुष्यहितकारिणी विद्युत मानी हैं। शंख में यदि गंगाजल को सिद्ध करके पिलाया जाय तो भयानक से भयानक रोग भी दूर हो सकता है यह एक अद्भुत सत्य है। इसमें तो कोई विशिष्ट व्यय भी नहीं होता।

बंगाल की स्त्रियाँ प्रायः शंख की चूड़ियाँ पहनती थीं और अब भी पहनती हैं। उनके अनुसार शंख धारण करने पर अन्य स्त्री-पुरुष की दृष्टि का कुप्रभाव प्राय: उन पर नहीं होता। सांख्यदर्शन में भी इसी का संकेत करते हुए लिखा है- "बहुभिर्योग विरोधी रागादिभिः कुमारीशंखत्। "

(६) जप या पाठ का महत्त्व

प्रत्येक विशिष्ट शब्द एक विशिष्टता रखता है। इसी कारण वेद के शब्दों की आनुपूर्वी में परिवर्तन नहीं किया जाता क्योंकि उसके शब्दों को उसी क्रम से पढ़ने में लाभ होता है। उसी आनुपूर्वी का मेघों पर भी प्रभाव होता है और

वृष्टि हो जाती है। उसी आनुपूर्वी का सूर्य देव पर प्रभाव पड़ता है जिससे वे प्रसन्न होकर लाभ पहुँचाते हैं।जपना १०८ बार क्यों हमारे श्वास प्रत्येक पल में ६ निकलते हैं। २५ पलों के एक मिनट में १५ श्वास हुए। इस हिसाब से एक घंटे में ९०० तथा बारह घंटे में १०८०० श्वास निकले। इनका शतांश १०८ होता है। अतः १०८ बार ही अपने इष्टदेव का जप किया जाता है।

एक रहस्य यह भी है कि माया का अंक ८ है और ब्रह्मन का अंक ८ है। माया में ही परिवर्तन होता है ब्रह्मन में नहीं। माला में १०८ मणियाँ होती है। सूर्य के १२ भेदों को ब्रह्मन के अंक से गुणा करने पर १०८ आता है। १०८ का योग भी १००+८-९ (ब्रह्मन) ही होता है। इस प्रकार सूर्यात्मिक विष्णु का जप गायत्री रूप में १०८ बार ही होना अपेक्षित है।

(७) दिशा - विज्ञान"

प्रत्यगुत्तर शिराश्च न स्वपिति" इस वचन के अनुसार पश्चिम अथवा उत्तर की ओर सिर करके सोने का निषेध किया है। विज्ञान के दृष्टिकोण से देखा जाए तो पृथ्वी के दोनों ध्रुवों में चुम्बकीय प्रवाह विद्यमान है। उत्तर दिशा की ओर धनात्मक प्रवाह रहता हैं और दक्षिण दिशा की ओर ऋणात्मक प्रवाह रहता हैं। हमारे शरीर में हमारे सिर का स्थान धनात्मक प्रवाह वाला हैं और पैर का स्थान ऋणात्मक प्रवाह वाला हैं। यह दिशा बताने वाले चुम्बक के समान हैं कि धनात्मक प्रवाह वाले आपस में मिल नहीं सकते। यदि हम अपने सिर को उत्तर दिशा की ओर रखेंगे तो उत्तर की धनात्मक और सिर की धनात्मक तरंग एक दूसरे से विपरीत भागेगी जिससे हमारे मस्तिष्क में बेचैनी बढ़ जायेगी और फिर नींद अच्छे से नहीं आयेगी जबकि यदि हम दक्षिण में सिर करके सोते हैं तो हमारे मस्तिष्क में कोई हलचल नहीं होती जिससे नींद अच्छी आती हैं।

पश्चिम में सिर करके सोने से पूर्व में पैर हो जाते हैं। "प्राची हि देवानां दिक्" (शतपथ ब्राह्मण) के अनुसार पूर्व दिशा देवताओं की दिशा है क्योंकि ग्रह नक्षत्रादि सभी पश्चिम से पूर्व की ओर गति करते हैं। पूर्व में पैर होने से देवताओं का अपमान होता है। अत: सोते समय दक्षिण व पूर्व की ओर सिर करके सोना चाहिए।

(८) ग्रहण में भोजन का निषेध

सूर्यग्रहण अथवा चन्दग्रहण के समय वायुमण्डल में कीटाणुओं का बहुलता से प्रसार हो जाता है, यह बात अणु वीक्षणयंत्र से देखी जा सकती है। हिन्दु शास्त्रों के अनुसार सब पात्रों में तथा सब वस्तुओं में 'कुश' (डाब) डालने का विधान है क्योंकि कुश डालने पर सब कीटाणु उस कुश पर प्रभाव डालते हैं। आयुर्वेद के अनुसार कुश कीटाणुओं को अपनी ओर आकर्षित करता है।

PSYCHOLOGICAL BENEFITS OF EXERCISE

Dr Manisha Sharma
Principal
Rajasthan Shikshak prashikshan Vidyapeeth

Psychological health is an important part of our lives. It affects our moods, emotions, behavior, and social interactions. Not only in our personal lives, but in our professional lives as well. It even has consequences for our physical health. Exercise can bolster our energy, make us resilient in the face of hardship, and has many other benefits for your mental health.

EXERCISE ALLEVIATES STRESS

This exercise benefit isn't going to shock anyone. It's a well known psychological benefits. Also one of the biggest reasons why people take up exercise. The science behind it is well documented, as well as it's calming effect on a stressed mind. But how does a physically stressful activity on the body actually end up relieving stress? It's a bit of a puzzle, but the long term benefits definitely compensate for the short term stress. For starters, it releases neurochemicals into the brain. The big ones being endorphins, dopamine, and norepinephrine. These chemicals are associated with better cognitive functioning, alertness and elevated moods. In addition to dumping feel good chemicals into your head, it also helps purge stress hormones from your body cortisol and adrenaline. From a psychological perspective, exercise also gives you a way to distract yourself from focusing on daily stressors. This could be from your boss, a task at work, or any number of personal problems. When the mind has nothing else to focus on, it will drift. Many people can fixate on immediate issues, specific stressful problems, or strong emotional feelings. So exercise can simply give you an immediate task to focus your energy on.

So while this benefit of exercise won't come as a surprise to you, it's still one of the best, time tested reasons to get out there and get moving. As we'll explore in other articles, stress is one of the biggest enemies of efficient brain operation. And exercise is an efficient stress management technique.

GIVES EMOTIONAL RESILIENCE

Stress also affects your emotional state. Strong emotions can be an unfortunate side effect of stressful events. One study separated participants between participants between those who exercised regularly and those who didn't. Both groups were equal in mood before the experiment. Then they were exposed to a stressful event. They observed that the physically fit group actually had smaller declines in positive mood than their more sedentary counterparts. It seems that people who get regular exercise are able to maintain a more positive attitude and emotional outlook after something stressful occurs. This gives exercisers yet another level of protection from the day to day stress that happens to all of us.

REDUCES ANXIETY

A meta-analysis published in 1995 had researchers take a look at 40 studies to measure the effects of exercise on anxiety. In analyzing several different study types, they found that exercise had a low to moderate effect on reducing anxiety levels. They also noted that adults who led a more stressful lifestyle, benefited most from the exercise. So for those that are feeling anxious from stress will benefit even more from exercise than someone who isn't.

INCREASES PAIN TOLERANCE

It has been pretty well documented that intense exercise can dull pain in the short term. Your body releases endorphins and other chemicals during and shortly after exercise that will decrease pain in the body.

But it's more than just short term. Exercise could be the key for those of you looking to increase your mental grit. A small study published in 2014 from Australia showed that participants who completed a six week aerobic exercise program increased their tolerance for pain. It wasn't that they felt less pain. In fact, researchers noted that participants were feeling pain at the same levels as before. The change was actually a mental one. They were able to withstand pain at higher levels after they had completed the exercise regimen.

HELPS BATTLE DEPRESSION

Depression is one of the most common mental conditions that affects people worldwide. An estimated 350 million according to the World Health Organization. Even scarier is the fact that depression is on the rise. It is set to be the 2nd biggest medical condition by 2020.

A large meta-analysis analyzed the effect of exercise on alleviating symptoms of depression. Two things were found from the review. They found positive results from a significant and moderate relief from depression. The second result came from the comparison of exercise to other forms of psychological therapy or drugs. Exercise was found to be just as effective as the other alternatives. Pretty important news for a nation that has a slight addiction to pills and prescriptions. People who may be looking for other, more cost effective ways to help fight depression, regular exercise could hold promise.

PREVENTS DEPRESSION

Preventing depression is even more important than fighting it. I won't use a cliche quote referencing ounces and pounds here. But let's agree prevention is far better than curing. Research tells us exercise helps the symptoms of depression, but scientists didn't understand how. At least until recently.In a study published in September 2014, researchers found a mechanism that helped explain the puzzle. And not just fight it, but help prevent the symptoms of depression.

The study gets pretty technical, but here are the key points. During stressful situations, there's a harmful substance that builds up in the blood. The blood then carries that substance to the brain. Scientists used genetically modified mice to help produce a certain protein. A protein which helps break down and remove the harmful substance in the blood.

Normal mice and the mice with the protein were then exposed to multiple stressful situations. Scientists saw the normal mice begin to express depressive behaviors, while the genetically modified mice acted normally.

So here's where the rubber hits the road. This same protein can be produced by skeletal muscle (both in mice and humans) through physical activity. The more physical activity you do, the more protein produced. So by doing regular exercise you build up the amount of protein in your system. When stress strikes, the protein eliminates the harmful substance, and shields your brain from symptoms of depression.

IMPROVES MOOD

Exercise causes the release of feel good chemicals in the brain. This part you know. So I want to share some interesting information you may not be familiar with.

Researchers took a look at how people deal with their bad moods. They identified a total of 32 different methods that people reported using. They then analyzed which methods were most effective at regulating their bad moods. After all the data was analyzed, exercise emerged as the most effective method at changing a bad mood. If you're curious, the methods coming in second and third were music and social interaction.

EXERCISE MIGHT JUST MAKE HAPPIER

Moods come and go. They are temporary by nature. But can exercise have an effect on happiness in the long term?

An important question, but also a difficult one. I thought there would be tons of information on the subject, but it's surprisingly sparse. There are various definitions of happiness and different ways to measure it. And happiness can mean different things for different people. Despite these problems, there have been some initial attempts to answer the exercise happiness question.

One study looked at data from 15 European countries. They compared people's physical activity from different categories. Higher levels of activity correlated with higher levels of happiness. Researchers noted that even though there was a link, they couldn't determine if the physical activity was the cause of the happiness.

In a slightly more convincing study, researchers looked at levels of physical activity in residents of Canada. They first established a baseline happiness for participants. They then analyzed data for changes in activity levels and happiness in the following years.

People who were inactive through the years were twice as likely to become unhappy than those who were active. Those people who were inactive were also more likely to become unhappy than others who became active over the same years. And finally, the researchers noticed people who were active and became inactive later increased their odds of becoming unhappy.

BEYOND THE PSYCHOLOGICAL

Exercise has some incredible benefits for our mental states, but it can do more than just that.

प्रकाशक

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन

राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ

शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर

Ph. : +91-141-2671967 E-mail : info@rspv.org | Website : www.rspv.org